cretion under
ction was on
ghest obtain
ge estimated
hour.

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

सप्तर्षि

अर्थात्

भारतमाता के सात सपूत ।

लेखक—

शिवदास गुप्त 'कुसुम' ।

सुलभ 'हिन्दी-पुस्तक-माला' सं. १२

सप्तर्षि

लेखक—

आरती, भारत की शासनप्रणाली, श्यामा, कुसुमकली,
कीचकबध आदि पुस्तकों के रचयिता,
'युगान्तर' के सम्पादक

श्रीयुत शिवदास गुप्त 'कुसुम'

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय
बनारस सिटी।

वि० १९७८
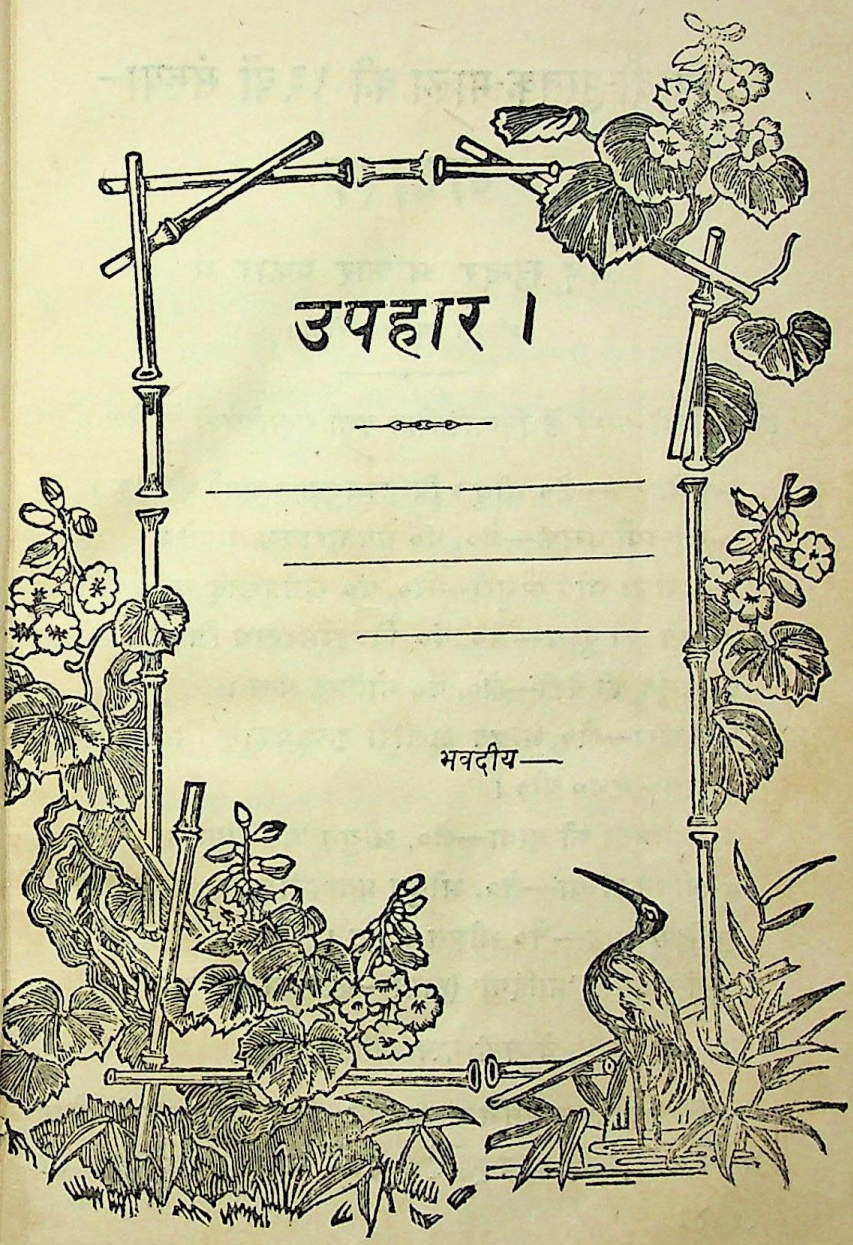
प्रथम बार } { मूल्य ।||=)
सजिल्द १।=)

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय,

बनारस सिटी।

उपहार ।
भवदीय—

हिन्दी-पुस्तक-माला की १३ वीं संख्या—

गजरा

बड़े सुन्दर आकार प्रकार में

शीघ्रही प्रकाशित होगी।

इसमें हिन्दी-संसार के निम्नलिखित यशी गल्पलेखकों के लेख होंगे—

१-परिहास—ले० श्रीयुत विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक।
२-सौन्दर्योपासक—ले०, पं० रूपनारायण पाण्डेय।
३-कुन्तला सोप फैक्टरी—ले०. पं० रामप्रसाद चतुर्वेदी।
४-पाप का पुण्य—ले०, पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा।
५-समुद्र की बेटी—ले०, पं० गोविन्द पन्त।
६-अधूरा—ले०, श्रीयुत अघौरी कृष्णप्रकाश सिंह, बी० ए० एल० एल० बी०।
७-स्वतंत्रता की छाया—ले०, श्रीयुत 'बड़े भैया'।
८-जीवन संध्या—ले०, श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव।
९-छिपी आह—ले० श्रीयुत अर्जुन।
१०-गंगाजमनी 'मोहिनी' (हास्य)—ले०, श्रीयुत 'पागल'।

ये सभी गल्प मौलिक, नये,

शिक्षाप्रद, सामाजिक, चटपटे, दिल में गुदगुदी पैदा करने वाले, बड़े भावपूर्ण हैं। इसमें मनोरम एक चित्र भी होगा।

(ख)

वक्तव्य ।

बहुत दिनों से मानस-क्षेत्र में इस विचार-बीज का बपन हो चुका था कि राष्ट्रीय-जगत् के महापुरुषों की जीवनियों का एक अच्छा संकलन निकालना चाहिए।

किन्तु, समयाभाव तथा निर्णय-विलंब ने बहुत दिनों तक विचार को कार्यरूप में परिणत होने से रोक रक्खा। इसी बीच में एक दिन मैंने इस बिचार को अपने मित्र और हिन्दी-ग्रन्थ-भंडार के अध्यक्ष बा० अम्बिकाप्रसाद गुप्तजी के सामने रक्खा। गुप्तजी ने मेरे विचार की सराहना ही नहीं की बल्कि उसे कार्यरूप में परिणत करने का विशेष रूप से अनुरोध भी किया। फलतः पाठक ! मेरे प्रयास का फल यह "सप्तर्षि" आपके सम्मुख है। लीजिए, अपनाइये।

"सप्तर्षि" में भगवान् तिलक, महात्मा गांधी, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, पं० मदनमोहन मालवीय, देशभक्त पं० मोतीलाल नेहरू, पुरुषसिंह अली-बन्धु तथा त्यागवीर चितरंजनदास इन सात भारतगगन के उज्वल नक्षत्रों की उज्वल कीर्तिकथावली का संक्षिप्त किन्तु, ऊर्जित और परिमार्जित भाषा में वर्णन है। भाषा आवश्यकता से अधिक क्लिष्ट नहीं रक्खी गई है। इस भय से कि कहीं पुस्तक सर्व साधारण के

लिए दुर्बोध न हो जाय, इसकी व्यापकता में बाधा न पड़े। पुस्तक राष्ट्रीय भाव से लिखी गई है। जिसमें राष्ट्रीय विद्यालयों के लिये भी यह काम दे सके। यत्न यह रहा है कि चरित्र नायकों का सच्चा चरित्र देश के सामने रक्खा जा सके।

अंत में; हम अपने काम में कहाँ तक सफल या विफल हुए हैं, इसका निर्णय-भार इस पुस्तक के विद्वान् पाठकों पर ही छोड़ हम अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं।

काशी विश्वविद्यालय,
नगवा-निलय
दीपावली, १९७८। } लेखक—
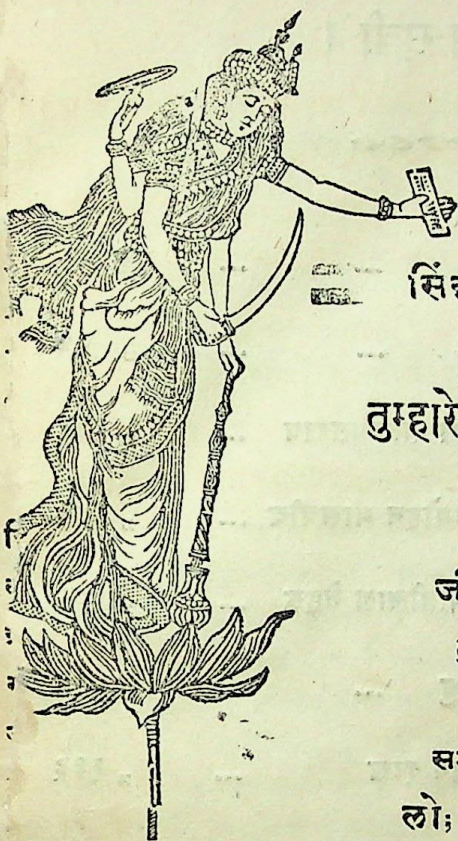
समर्पण
सिंह-प्रसविनी
माँ !
तुम्हारे सात सपूतों
की
यह—
जीवनचर्या
तुम्हें छोड़
किसे
समर्पित करें ?
लो; अपनालो ।
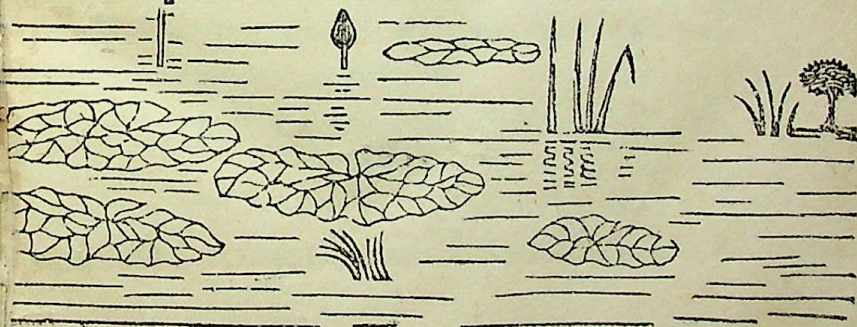
क्रम-सूची ।
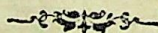
भगवान् तिलक ।

जन्म और शिक्षा ।

कर्मयोग के अवतार विद्या, के भण्डार, राष्ट्र के सूत्रधार, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का जन्म २३ जुलाई सन् १८५६ ई० में हुआ था। आपके पूज्य पिता गंगाधरपंत कोकण प्रान्त में एक शिक्षक थे। यों तो प्रायः सभी विषयों में इनका ज्ञान बहुत उत्तम था, किन्तु गणित और व्याकरण ये दो इनके अत्यन्त प्रिय विषय थे। इनकी रचित त्रिकोणमिति पुस्तक पर 'दक्षिण-पुरस्कार-समिति' की ओर से उचित पुरस्कार भी मिला था।

पिता शिक्षक थे, अतः लोकमान्य की शिक्षा का श्रीगणेश घर ही से हुआ। घर से अंगरेजी पढ़ने के लिये ये पूना आए थे और वहीं से १८७२ ई० में मैट्रिक परीक्षा पास की। इसी वर्ष दुर्दैव की गाज गिरी, आपके समादरणीय पिता ने परलोक यात्रा की।

मैट्रिक पास करके इन्होंने डेकेन कालेज में अपना नाम लिखाया। सन् १८७६ ई० में बी० ए० और अगले तीन सालों में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की।

कर्म-क्षेत्र में प्रवेश ।

परीक्षोत्तीर्ण होते ही लो० तिलक को कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने की चाट लगी। इस समय सरकारी नौकरी वकालत आदि कई मार्ग थे जिनपर चलकर भौतिक-सुख-साधन-सम्पन्न बनना उनके लिए एक बड़ी सरल और सु-कर बात थी। किन्तु लोकमान्य ने इन प्रलोभन पुंज ऐहिक सुख-सुलभ साधन को अपना ध्येय और श्रेय लक्ष्य नहीं समझा था। उनकी अन्तरात्मा के अंदर भाव उद्दीप्त होरहा था। देशसेवा का संदेश और जननी जन्मभूमि का निदेश उन्हें अपनी ओर आमंत्रित कर रहा था। भीतर की आवाज़ बार बार कहती थी कि 'तुम्हारा असाधारण जीवन इतर जनों की भांति अर्थ-संचय अथवा भौतिक-सुख-साधन संकलन के लिए नहीं है। तुम्हारे जीवन का लक्ष्य बड़ा सुंदर है। तुम्हारा भविष्य उज्वल होगा। तुम उसे मलिन न करो'। भगवान् ने अन्तरात्मा की आवाज़ सुनी, सरकारी नौकरी के विचार को पैरों ठुकराया। अब लगे सोचने कि करना क्या चाहिये। इनके मित्र आगरकर एम० ए० तथा कई और सहोत्तीर्ण मित्रों की यह राय हुई कि एक आदर्श पाठशाला स्थापित की जाय। जिन दिनों ये लोग इसके विषय में लगे हुए थे, उन्हीं दिनों महाशय विष्णु-शास्त्री चिपलूणकर सरकारी नौकरी को धत्ते बताकर वहीं पूने पधारे थे। उन दिनों उनका भी एक पाठशाला ही खोलने

का संकल्प था । दो संकल्पों का संघात हुआ । और पाठशाला खोलने की बात पक्की हो गई ।

न्यू इंगलिश स्कूल की स्थापना ।

महाशय विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तत्कालीन अंगरेज़ी शिक्षा के विरोधी थे। उनका विचार था कि इस शिक्षा से राष्ट्रीय लाभ कुछ नहीं होता । ठीक ही है, राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश राष्ट्र के बच्चों में राष्ट्रीय भव्य भावों का भरना होता है। राष्ट्रीय शिक्षा एकमात्र इसी उद्देश्य से दी जाती है कि देश के प्यारे बच्चे राष्ट्र की नौका के कर्णधार बनें । उनकी नस-नसों में राष्ट्रीयता की झङ्कार हो, उनके जीवन में देश-प्रेम का परिपाक हो, उनके खून राष्ट्र के भावों से खौलते हों । किन्तु, यह बात भला एक विदेशी सरकार के हाथ से दी हुई शिक्षा में कहाँ से आ सकती है। विदेशीय सरकार कब यह शुभ अभिलाषा कर सकती है कि विजित जाति के बच्चों में ज्ञान आवे । तात्पर्य यह कि उस समय की शिक्षा प्रणाली की अपूर्णता ने म० शास्त्री को एक आदर्श राष्ट्रीय पाठशाला स्थापित करने को बाधित किया । लोकमान्य तथा मि० आगरकर आदि विद्वानों ने योग दिया । पाठशाला न्यू इंगलिश स्कूल के नाम से खुली । इस पवित्र उद्देश्य से स्थापित संस्था में वे ही लोग सम्मिलित किये जाते थे जो स्वार्थत्याग करके २० वर्ष तक केवल ३०) मास वेतन लेकर कार्य करने पर तय्यार होते थे ।

पहिले पहल इसमें थे ही दो चार सज्जन म० विष्णुशास्त्री, आगरकर एम. ए. तथा श्रीबालगंगाधर तिलक अध्यापन तथा शिक्षण का कार्य करते थे । लोकमान्य तथा विष्णुशास्त्री ने तो एक वर्ष तक अवैतनिकरूप से ही काम किया ।

तिलक जी मुख्यतः गणित पढ़ाते थे। गणित में इनकी असाधारण गति थी। अपने पिताकी भांति इन्होंने भी गणित की कई पुस्तकें लिखी हैं। अध्यापन-कार्य के उपरान्त पाठशाला का प्रबन्ध संबंधी बहुत कुछ काम इनके ऊपर था। ये प्रबंध-कार्य में म० शास्त्री के सहयोगी और सहकारी थे। स्कूल के लिए चंदे लाना, स्वार्थत्यागी अध्यापकों का संग्रह करना, इनके ऊपर था। इनके साथी नामजोशी तथा इनका ही यह उद्योग था जो बहुत थोड़े समय में ही स्कूल एक अच्छीगति से चल पड़ा। संस्कृत कोशकार वामन शिवराम आपटे, प्रसिद्ध भासिका नाटक के लेखक श्री० वासुदेव राव केलकर, श्री० महादेव शिवराम आदि उत्साही सज्जनों ने धीरे धीरे हाथ बटाया।

म० चिपलुणकर शास्त्री ने जब देखा कि स्कूल चल निकला तो उन्होंने आपका कर्मक्षेत्र और विस्तृत करना चाहा। समाचार पत्र निकालने की धुन समाई। प्रेस ख़रीदा गया। मराठी का 'केसरी' और अंगरेजी का 'मराठा' ये दो पत्र निकलने आरम्भ हुए। ये दो पत्र निकले तो, लेकिन धन-बल नहीं केवल उत्साह-बल इनका आश्रयस्थान था। यही कारण था जो आर्थिक अड़चनें उपस्थित होती रहीं। केसरी का संपादनभार श्री० आगरकर पर और "मराठा" का महाराज तिलक के ऊपर था। सन् १८८२ का काल था। उन्हीं दिनों रियासत कोल्हापुर में अत्यन्त धींगा धींगी मची हुई थी। राजा और प्रजा दोनों पर प्रबंधकार माधवराव बर्वे के उत्पात का आघात पहुंच रहा था। "केसरी" तथा "मराठा" के निर्भीक संपादकों ने प्रबंधकार माधवराव की तीव्र आलोचना प्रकाशित की। उसने मान-हानि का दावा किया। फलतः १०१ दिन की सज़ा हुई। स्मरण रखना चाहिये जिन लेखों

के कारण तिलक पर मुकदमा चलाया गया था उसमें से कोई भी उनका लिखा नहीं था । ऐसी दशा में यदि वे चाहते तो मुक्त हो सकते थे। किन्तु उनका कदापि यह स्वभाव नहीं था कि संकट के भय से भीरु बन कर अपने उत्तरदायित्व को दूसरे के सिर मढ़ अपने अलग हो जाँय। भगवान् ने सहर्ष जेल यात्रा स्वीकार की।

पूना का प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज ।

न्यू इंलिश स्कूल की उत्तरोत्तर उन्नति देखकर संचालकों का मन बढ़ा। चार वर्ष की कार्य-प्रणाली को देखकर इच्छा यह हुई कि स्कूल को कालेज का स्वरूप दिया जाय। कालेज बनाने के लिए धन जन दोनों का पर्याप्त संग्रह परम आवश्यक था। फलतः विचार उठते ही संचालकों ने इस काम के लिये लोकमान्य तिलक और श्रीयुत नामजोशी का नाम लिया। प्रबन्धभार इन्हीं दोनों सज्जनों को सौंपा गया। इन दोनों ने दक्षिण में कोई पचास हज़ार की रकम एकत्र की । तत्पश्चात् इस काम के लिए दक्षिण-शिक्षा-समिति नाम की एक संस्था भी स्थापित की गई। संस्था के नियम लोकमान्य ने तैयार किये। कमेटी ने उन्हें एक कंठ से स्वीकार किया। फल यह हुआ कि सन् १८८४ ई० में, चंदादाताओं के इच्छानुसार बंबई के तत्कालीन गर्वनर सर जेम्स फर्गुसन की जन्म स्मृति में पूना के प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज का जन्म हुआ।

दो बरस तक तो कालेज का काम निर्विघ्न चलता गया। किन्तु दो वर्ष का अन्त होते हो कालिज में मतभेद ने जन्म लिया। कतिपय कारणों से लोकमान्य तिलक ने कालेज से अपना सम्बन्ध रखना ठीक नहीं समझा। अतः १८९० ई० में त्याग-पत्र

देकर उन्होंने कालेज से अपना बिलकुल सम्बन्ध तोड़ लिया।

जिस वृक्ष को लोकमान्य ने लालसा के श्रम-बिन्दु से सींच सींच कर पल्लवित किया था, जिस महानकार्य की सफलता के लिए बराबर वे बरसों अथकश्रम करते रहे, उसी कार्य को सफलता के तटपर पहुँच जाने पर, छोड़ते समय उन्हें कितना दुःख हुआ होगा, यह स्वयं सोचने की बात है।

लोकमान्य तिलक पर भारत सरकार की क्रूरदृष्टि।

अठारह महीने की सज़ा।

जब तक मतभेद ने जन्म धारण नहीं किया था तब तक केसरी और मराठा दोनोंही पत्र दक्षिण-शिक्षा-समिति के स्वामीत्व में निर्विघ्न निकलते रहे। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, कोल्हापुर-काण्ड में श्री० आगरकर तथा लोकमान्य दोनों संपादकों ने सज़ायें भोगीं। इस घटना ने पत्र के महत्व को और भी बढ़ा दिया। किन्तु धीरे धीरे यहाँ भी मत-भेद का प्रवेश हुआ। श्रीयुत आगरकर तथा तिलक राजनैतिक विचारों में तो सहमत थे किन्तु इनके सामाजिक विचार नितान्त एक दूसरे के विरोधी थे। इस प्रकार दो पक्ष बन गये। एक के नेता हुए श्री० आगरकर—और दूसरे के म० तिलक। आगरकर का दल सुधारवादी था। वह सामाजिक सुधार का पोषक था, उसकी राय में सामाजिक उन्नति में यदि धार्मिक विषय बाधक होते हों तो उनकी अवहेलना करने में एक बार संकोच नहीं होना चाहिए। और इधर लोकमान्य तिलक यह कहते थे कि सामाजिक सुधार होना चाहिए, यह माना, किन्तु सामाजिक-सुधार की तूफ़ान से धर्म ध्रुवता की जड़ को कदापि हिलने न देना चाहिए। सारांश यह है कि

श्रीयुत आगरकर सामाजिक—सुधार के अंध-पक्षपाती थे और लो० तिलक धार्मिक-वृत्त के अंदर रहकर सामाजिक संशोधन करना ठीक समझते थे। इससे कदापि यह न समझ लेना चाहिए कि लो० तिलक सामाजिक-सुधार के घोर विरोधी थे। दोनों के विचारों में केवल इतनाही मतभेद था। किन्तु इसी मतभेद के भयंकर रूप ने आगरकर को केसरी से संबंध तोड़ देने पर बाधित किया। आगरकर ने केसरी से अपना बिलकुल संबंध तोड़ लिया और "सुधारक" नामक एक पृथक पत्र निकाला। अंत में छापेखाने का भी बटवारा हो गया। प्रो० केलकर और श्री० हरिनारायण गोखले के भाग में प्रेस और लोकमान्य के हिस्से में दोनों पत्र मय कर्ज़ के पड़े। फलतः सन् १८९१ ई० से लोकमान्य दोनों पत्रों "केसरी" और "मराठा" के मालिक हुए। जिस समय तिलकने "केसरी" को अपने हाथ में लिया था उस समय उस पर ७ हज़ार रुपयों का ऋण था। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि तिलक ने केवल राजनैतिक आन्दोलन तथा राष्ट्रीय भावों के प्रचार के लिए ही केसरी को अपने हाथ में लिया। केसरी ने आपकी अध्यक्षता में महाराष्ट्र ही क्यों कुल देश में किस प्रकार काम किया यह भारत के प्रायः किसी व्यक्ति से छिपा नहीं है। केसरी वस्तुतः भारत-कानन का केसरी निकला।

"केसरी" द्वारा तो जो कुछ राष्ट्रीय-जागृति और देशभक्ति का काम होना चाहिये सो होही रहा था इधर लोकमान्य को जब इतने से संतोष न हुआ तो उन्होंने दो राष्ट्रीय-उत्सवों को जन्म दिया। केसरी में एक ज़बरदस्त लेख लिखकर आपने 'गणपति-उत्सव' तथा 'श्री-शिवाजी उत्सव' की आवश्यकता बतलाई। उनका राष्ट्रीय दृष्टि से मोल समझाया। फल यह हुआ कि महाराष्ट्र

में इन उत्सवों का शीघ्रही आश्चर्य-जनक प्रचार हो गया। तिलक महाराज के घोर विरोधी सर वेलेंटाइन शिरोल की पंक्तियों से उक्त उत्सवों की महत्ता का और भी पता लग जाता है। वह लिखता है—

Mr. Tilak was the triumphant champion of Hindu orthodoxy the highest priest of Ganesh, the inspired prophet of a new nationalism wich in the name of Shivaji would cast out the Mlechha's and restore the glories of the Maharatha history— ※

केसरी में प्रकाशित तिलक के निर्भीक, गंभीर तथा विद्वत्ता-पूर्ण विचारों, उत्सवों और उनकी असाधारण देश-भक्ति के भावों का इतना गहरा असर हुआ कि देश में उनका एक उच्च-स्थान बनने लग गया। उनकी लोक-प्रियता तथा उनका प्रभाव समाज में जल-प्लावन की भाँति वेग के साथ बढ़ रहा था। उनके अनुयाइयों की संख्या भी इस समय तक काफ़ी हो चुकी थी। महाराष्ट्र में इस समय राष्ट्रीय-पक्ष नाम की तरुण, तेजस्वी और स्वाभिमानी लोगों की एक संस्था थी। भारतसरकार की कड़ी आलोचना करना, जहाँ कहीं वह लोक-हित-वादिता में भूल करे उसे बतलाना, प्रजापक्ष की पुकार को निर्भीक होकर सरकार के कानों तक पहुँचाना, येही इस संस्था के मुख्य कार्य थे। संस्था के उत्तम उद्देश्यों के कारण लोकमान्य ने भी इसमें हाथ दिया। हाथ ही क्यों थोड़े ही दिनों में वे उसके अध्वर्यु माने जाने लगे थे। यों तो पहिले ही से संस्था भारत-सरकार की आँखों में खटक रही थी, किंतु जब से तिलक ने उसमें भाग लिया तब से विशेषरूप से दृष्टि रक्खी जाने लगी। फिर भी न जाने किस नीति को सोच समझ कर बंबई सरकार ने उन्हें बंबई व्यवस्थापक सभा

※ *Indian Unrest* P. 47

का सदस्य निर्वाचित किया। कानून-सभा में भी, सरकार की हानिकर योजनाओं और वृत्तियों की तीव्र आलोचना करने में वे कभी कोर कसर नहीं रखते थे। उनके शिरोल जैसे शत्रु ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि उनकी आलोचना इतनी प्रमाण-पूर्ण और राजनीति-मर्यादा के अंदर होती थी, कि उसे कटु समझते हुए भी सरकार उनका मुंह बंद नहीं कर सकती थी।

इसी समय सन् १८९७ ई० में पहिले पहल बंबई में ही ब्युबानिक प्लेग का अवतार हुआ। सरकार ने छूत बढ़ने के भय से प्रतिरोध के उपाय सोच निकाले। कारंटाइन तथा घर स्वच्छ रखने में जो विधान आरंभ किये वे लोगों को इतने कष्टकर प्रतीत हुए कि लोग निदान काम में लाने से रोग ग्रस्त होकर मरने को श्रेय देने लगे थे। पूनेकी प्लेग-कमेटी की करतूतों से भी लोगों के नाकों में दम आ रहा था। सारांश यह कि लोग सरकार की प्रतिरोधकारिणी नीति से अत्यंत उद्विग्न और संत्रस्त हो रहे थे। किसी प्रकार उस कमेटी के कष्टों से छुटकारा पाने की सबको सूझ रही थी। आख़िर को अनर्थ होही गया। २७ जून सन् १८९७ ई० में एक पुरुष ने प्लेग-कमेटी के सभापति मि० रैंड का ख़ून कर ही डाला।

इस घटना ने सारे देश में सनसनी पैदा कर दी। सरकार के भी होश उड़ गये। जब सरकार से और कुछ करते न बना तो अन्त में उसने इस दोष को निर्दोष तिलक के माथे मढ़ा। तिलक पहिले से सरकार की आँखों में खटकते थे ही अब सुयोग देखकर सरकार ने उनपर हाथ साफ करना चाहा। केसरी के ख़ून की घटना के पूर्व के लेखों को हत्याकाण्ड का कारण बतला कर सरकार ने संपादक तिलक को गिरफ़ार

कर लिया। मुक़द्दमा बम्बई हाईकोर्ट में आया। ६ योरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी, ९ मनुष्यों की एक जूरी बैठी। ३ मराठी ज्ञाता जूरियों ने तिलक को निर्दोष बतलाया, और शेष मराठी न जानने वाले गोरे जूरियों ने सदोष। किन्तु यह तो एक न्याय का आडम्बर मात्र था। सरकार की तो नीयत यह थी कि किसी प्रकार इस उठते हुए देश के वृक्ष को कतर ब्यौंत कर ठीक करना चाहिए। जज स्ट्राची ने राजद्रोह का दोष लगाया और झट १८ महीने की सज़ा ठोंक दी। फैसले की अपील हाईकोर्ट में और पुनः प्रिवी कौंसिल में करने का प्रयत्न किया गया। किन्तु सब यत्न निष्फल हुए। कुछ मित्रों ने माफ़ी माँगने की भी सलाह दी जिसका उत्तर देते हुए तिलक ने कहा था-"माफ़ी माँगकर अपमान पूर्वक देश भाइयों में रहने की अपेक्षा काले पानी चला जाना मुझे स्वीकार है।"

सच है—"संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।" महात्मा तिलक ने माफ़ी नहीं माँगी। प्रत्युत दण्ड भोगना सहर्ष स्वीकार किया। कारावास में पहुँच कर उन्होंने वेद-काल के निर्णय पर एक अत्यन्त अन्वेषण पूर्ण लेख लिखकर लंडन की प्राच्य समिति में भेजा। यही निबंध आगे चलकर Orion नाम से प्रकाशित किया गया। अन्वेषक-जगत् ने इस पुस्तक का कितना आदर किया, इसका अनुमान इतने ही से लगाया जा सकता है, कि इस ग्रंथ ने मैक्समूलर को तिलक से मैत्री करने पर बाधित किया। डाक्टर हन्टर तथा मैक्समूलर ने विक्टोरिया से तिलक की रिहाई के लिए याचना की और कहा कि एक ऐसे विद्वान-मंडलि-मुकुट मनुष्य का कारावास में सड़ना ठीक नहीं। इस पर छः मास नियत तिथि के पूर्व ही कुछ नाम मात्र की प्रतिज्ञाओं पर लोकमान्य मुक्त किये गये।

स्वदेशी आन्दोलन।

छः वर्ष का कठोर कालेपानी।

अत्याचार की तलवार से जीवन मरता नहीं, दमन नीति से आत्मिक-बल का कदापि शमन नहीं होता, ज़बान रोकना ही ज़बान को खोलने के लिए उकसाना है, तपाना सोने को और भी तेज़ी से चमकते हुए देखने की अभिलाषा है। सरकार का किसी जाति या व्यक्ति विशेष को दबा कर (उसके साथ अन्याय-पूर्ण अस्त्रों से काम लेकर) उसके अप्रतिहत ओज की उठती हुई लहर को दबाना ठीक इसी प्रकार है।

सरकार के प्रति घृणा या विरोध के भाव प्रजा के अन्दर तभी आते हैं, जब कि प्रजा सरकार की नीतियों से अस्त हो उठती है—घबरा जाती है। प्रजा सरकार की नीति से घबरा कब जाती है जब कि सरकार की नीतियों में प्रजा के प्रति शुभेच्छा, सद्भाव और पुत्र-प्रेम के विचार नहीं रह जाते। जब "प्रजा का खून चूसना" सरकार की नीयत हो जाती है उसी समय प्रजा में भी उग्र भावों को स्थान मिलता है, वह भी भयंकर उपायों को काम में लाने पर बाधित होती है। इसलिए स्पेन्सर के अनुसार यदि कोई सरकार चाहती है कि प्रजा राज-भक्त रहे तो उस सरकार को प्रजा-भक्त बनना चाहिए।

किन्तु नहीं इधर तो बीमारी दूसरी और दवा दूसरी का हिसाब किताब चलता है।

गर्ज़े कि, सरकार कारावास में बन्दकर तथा जेलख़ाने की विषम यातनाओं का मानचित्र दिखला कर नवयुवक तिलक को आगे बढ़ने से रोकना चाहती थी। उसकी अभिलाषा

और मन्शा यह थी राजनैतिक भय से आत्मिक बल की आग बुझा दें, किन्तु सरकार की चेष्टा सदा की भांति निष्फल सिद्ध हुई। उसका यह प्रयत्न ऐसा था जैसा कि तुंगतीव्र ज्वालावली को पवन के झोंकों से बुझाने का प्रयत्न करना। बारह महीने की सज़ा ने तिलक के तेज को और भी बढ़ा दिया। देश में उनका आदर और भी बढ़ गया। कहाँ वो जेल जाने के पूर्व केवल महाराष्ट्र प्रान्त के ही नेता माने जाते थे और कहाँ अब जेल से आते ही समस्त देश उन्हें अपना शिरमुकुट समादरणीय नेता और आत्मत्यागी देशभक्त मानने लगा।

देश ने उनके कार्य्यों का उचित आदर किया। देश ने उनके त्याग पर फूल बरसाये। देश ने उनके साहस और अदम्य देशभक्ति की श्लाघा की झड़िया बाँध दीं। इससे उनको और भी प्रोत्साहन मिला—और भी तेज़ी और वीरता से काम करने की ध्रुव धारणा हृदय में प्रविष्ट हुई।

जेल से छूट आने पर तिलक पहिले से भी अधिक ज़ोर शोर के साथ केसरी का संपादन करने लगे। केसरी की ग्राहक-संख्या भी इस समय खूब बढ़ रही थी। कारण यह था कि "केसरी" को काम करने का नैतिक सुयोग हाथ लग गया था।

भारत में राष्ट्रीयता की तेज़ आग सुलगाने वाले, भारत को उत्थान के लिए सुषुप्ति की अवस्था से चपत मार कर जागृति की दशा में ला देने वाले—यही क्यों भारत के कुण्ठित कानों में जागृति की झङ्कार डालने वाले लार्ड कर्ज़न का ज़माना था। ज़माना था आसुरी शक्ति का। जिसके कारण देश का बच्चा बच्चा क्षुब्ध था। लार्ड कर्ज़न की हार्दिक इच्छा थी कि साम्राज्य के वैभव का उपभोग केवल गोरों ही के भाग में

पड़े । कर्ज़न यह चाहते थे कि भारतवासियों को साफ़ साफ़ यह बतला दिया जाय कि ग्रेट ब्रिटेन तुम पर राज्य करने के लिए काफ़ी मज़बूत है ।

सात सालों के शासन से लार्ड कर्ज़न ने अपनी आन्तरिक इच्छाओं की घोषणा भी ख़ूब अच्छी तरह की । कूटनीति से अन्याय पूर्ण नियम और बंधनों से अथवा जैसे होसका वैसे कर्ज़न ने भारत को पैरों तले कुचल कर उसकी रही सही शक्ति के चूसनेमें कोई कोर कसर नहीं छोड़ रखी । वह तो न यह देखना चाहते थे कि भारत के काले लोग कांग्रेस करें और न उनकी यह इच्छा थी कि इन्हें संगठन-शिक्षा का सुअवसर दिया जाय । गर्ज़ कि किसी प्रकार वह भारत को पनपने देना नहीं चाहते थे । वह समझते थे कि यह–विषवेलि है, अगर बढ़ी तो हमारे हक़ में बड़ा ही बुरा होगा । ख़ैर जो कुछ उनके सामर्थ्य के अंदर था उन्होंने किया—कुछ छोड़ नहीं रक्खा । अपनी समझ में तो वह भारत के गले की जंजीर को ख़ूब मज़बूत करके यहाँ से गये, भारतके जीवन-प्रदीप को बुझाकर ही उन्होंने इस पवित्र भूमि से अपने चरण कमल हटाये—यहाँ से टिकट कटाये ।

यह तो रहा उनका कार्यकलाप, इतने पर भी हम आपको बतला देना चाहते हैं कि भारतवासी आपके चिरकृतज्ञ हैं । क्योंकि यह आपकी ही दया थी जिसने देश में राष्ट्रीयता की आग भड़काई और ऐसी भड़काई कि जिसका शमन होना अब असंभव सा है । कहना नहीं होगा कि देश के राष्ट्रीय जीवन का आरंभ लार्ड कर्ज़न से ही होता है । यही समय था जब कि देश ने आन्दोलन करना सीखा, निर्भीकता की दीक्षा ग्रहण की और राष्ट्रीयता के नवीन युग में अपना पहिला पैर डाला ।

ऐसे अच्छे सुयोग पर भला भारत-कानन—"केसरी" सोया कब रह सकता था? कर्ज़न की आलोच्यनीति ने उसे जग पड़ने को बाधित किया। फलतः उसे जगना पड़ा। केसरी ने कर्ज़न के कार्यकलाप की तीव्र आलोचना आरंभ की। एक से एक मार्मिक राजनीतिक लेख छपने लगे। जिसे पढ़कर देश में केसरी का आदर और लार्ड कर्ज़न का अनादर होने लगा। उन दिनों केसरी की बात क्या पूछनी था। केसरी हाथों हाथ लिया जाता था, रास्ते रास्ते पढ़ा जाता था। लार्ड कर्ज़न पर जितना कुछ देश को लिखना होता था वह इसी केसरी के द्वारा होता था। यही कारण था जो केसरी की हलचल विलायत तक पहुँची हुई थी। वहाँ भी केसरी जनता के कुतूहल का कारण बन रहा था।

इसी बीच में एक नई जागृति खड़ी हो गई। कुछ लोगों से तिलक की बढ़ती न देखी गई। उन्होंने सरकार की सहायता से एक अभियोग खड़ा किया और चाहा कि उनके चरित्र पर दोषारोपण करके उन्हें आदर के ऊँचे आसन से गिरायें। यह था ताई महाराज का मुकदमा। १९०२ से १९२० तक बराबर इस मुकदमे की शाखाएँ बीच बीच में फूट निकलती थीं। इसमें तिलक को जो २ परीशानियाँ उठानी और झेलनी पड़ीं, वह अभियोग के समूल-पाठ से ही मालूम हो सकती है*। यहाँ केवल इतना ही लिख देना अलम् होगा कि सरकार ने इस मामले में बहुत ही जघन्य भाग लिया था। सरकार ने ही यह मामला उठवाया—इस काम के लिए वकीलों के मिहनताने आदि के रूप में कोई ६०—७० हजार रुपये स्वाहा किये।

* इस मामले का विस्तृत वर्णन केसरी के फाल्गुन वदी ८ शाके १८२५ के अङ्क में दिया हुआ है। लेखक।

इससे भी बढ़कर निंदनीय बात तो यह थी कि सरकार इस मामले के न्याय में भी चपलता मचाना चाहती थी। उसकी कभी यह मन्शा न थी कि यह फँसा हुआ चूहा फिर चूहे-दानी तोड़ कर निकल भागे और आकर विदेशीय सरकार रूपी बंधन की गांठ कुतरने लगे। किन्तु संतोष और हर्ष की बात यह हुई कि हाईकोर्ट की अपील में लोकमान्य दोष से विमुक्त हुए। सरकार ने तिलक पर जो तूफान उठाया था वह नष्ट हो गया। सरकार को अपने मुँह की खानी पड़ी, उसे अंत में नीचा देखना पड़ा और तिलक फिर कुछ दिनों के लिये राजनैतिक जाल से मुक्त होकर कार्य करने के लिए स्वतंत्र हुए।

इस मुक़दमे का कार्य सँभालते हुए भी तिलक राजनैतिक आन्दोलनों की ओर से बिलकुल बेसुध नहीं थे। उन्होंने बराबर राजनैतिक आन्दोलनों को समाचार पत्रों में जारी रखा। "केसरी" की गति ठीक उसी प्रकार रही।

इधर लोकमान्य अभियोग से मुक्त हुए कि उधर राज-नैतिक आवश्यकताओं ने उन्हें आमंत्रित किया। सन् १६०५ ई० में "बंग-भंग" की घोषणा प्रकाशित हुई। अब क्या था अब बंगाल बर्रा उठा। जहां बंगाल में अशान्ति की आग भड़की कि देश भर में उसकी अग्नि-शिखा पहुँच गई। देश भर में हलचल मच गया।

कहना नहीं होगा कि बंगाल के इस महान् आन्दोलन को महाराष्ट्र से एक उचित सहायता मिली। महाराष्ट्र ने उचित रूप से योग दिया। स्व० गणेशवासुदेव जोशी "काका" द्वारा प्रचारित स्वदेशी आन्दोलन का काम लोकमान्य ने अपने हाथों में लिया। आप स्वदेशी आन्दोलन के बड़े भारी पक्षपाती

थे। एक स्वदेशी-आन्दोलन और दूसरे विदेशी माल का बहिष्कार इन दो तेज़ कैंचियों से ही विदेशी बंधन की डोर काटी जा सकती है, यह आपकी निश्चित मति थी। स्वदेशी आन्दोलन पर इन्होंने कई पैम्फलेट भी लिखे—केसरी के अंकों को बराबर इसी आवश्यक विषय से भरते रहे। अंत में अपने अविरल उद्योग से आपने यहाँतक कर दिया कि देशमें स्वदेशी आन्दोलन की चर्चा सुन पड़ने लगी, महाराष्ट्र के प्रायः सभी विद्वान् बंगाल की हलचल में सहायता देने लगे। सर वे० शिरोल ने इसको इस प्रकार प्रकट किया हैः—

He had been one of the first Champions of Swadeshi as an economic weapon in the srtuggle against British rule.

शिरोल के वाक्यों से यदि द्वेष की गंध अलग कर ली जाय तो इस बात का प्रमाण मिलता है कि बंगाल की राष्ट्रीयता की लहर को समस्त देश में फैलाने में भगवान् तिलक कितने कारणीभूत हुए थे।

देश में इस समय बड़ी विकट समस्या उपस्थित थी। सन् १९०७ ई० की सूरत की कांग्रेस में, कांग्रेस के दो दल हो गये थे। एक गरम, दूसरा नरम। नरम दल वालों ने राष्ट्रीय पक्षवालों के लिये कांग्रेस की किवाड़ बंद कर ली। सूरत की कांग्रेस में अवस्था और भी भयंकर होगई थी, लोकमान्य व्याख्यान देने से रोके गये। लड़ाई होते होते बची।

इधर नरम और गरम दलों का वाग्युद्ध आरंभ था और उधर बंग-भंग का आन्दोलन देश के वायुमंडल में अपूर्व परिवर्तन कर रहा था। सूरत-कांग्रेस के केवल दो दिन पहिले ढाका के मजिस्ट्रेट का ख़ून हो गया। एक ही ख़ून होकर हत्याकाण्ड का अन्त नहीं हुआ, प्रत्युत् रक्तपात की संख्या-माला

बढ़ने लगी। बमकाण्ड उपस्थित होगया। अब तो दोनों दलों के नेता इस अकल्पित घटनाओं को देखकर स्तम्भित हुए। सरकार ने भी कर्ज़न के किये हुए पापों का प्रायश्चित्त आरंभ किया और जिस तरह बन पड़ा दुर्घटनाओं को बंद करने का प्रयत्न करने लगी। देश के एंग्लो इंडियन क्रोध से आग बबूले हो रहे थे। वे सरकार को दमन नीति का आश्रय लेने और राष्ट्रीय पक्ष के लोगों और समाचार पत्रों का गला घोंटने की सलाह देने लगे। प्रयाग के पायनियर ने तो यहाँ तक सुझाया था कि बम के संबंध में सरकार को जिन जिन नेताओं पर संदेह हो उनकी एक सूची तैयार की जाय और यह घोषणा कर दी जाय कि जिस हद में बम-घटना होगी वहाँ के २०-२५ लोगों को फाँसी दे दी जायगी।

भारत की जान को धान की तरह कटते देखने वाले एँग्लो इंडियन लोगों ने सरकार को सलाह तो ख़ैर अच्छी दी किन्तु उन्हें स्मरण चाहिये था कि प्रजा-संक्षोभ की आग, दमन की घृत-आहुति से और और बढ़ती है। उसके शमन का उपाय दमन नहीं बल्कि संक्षोभ के कारणों को नाश करना ही है।

उधर सरकार को एँग्लो इंडियन मंत्रियों ने दमन की मंत्रणा दी और इधर भारत के नेता-अपने तू तू मैं मैं में व्यस्त रहे। केसरी ने तो ख़ैर सदा की भाँति इस समय भी लेख लिखकर देश और सरकार दोनों को आवश्यक परामर्श दिये किन्तु वहाँ परामर्श की बात सुने कौन। सरकार ने एँग्लो इंडियन भाइयों के ही सलाह पर काम करना श्रेय समझा। फलतः उसने दमन का कार्य आरंभ कर दिया। पहिले अख़बार ही वालों पर गाज गिरी। "काल" के संपादक प्रा० पराञ्जपे पर राज-द्रोह का अभियोग चलाया गया। इसी

२

मुकदमें की पैरवी में लोकमान्य बंबई आये हुए थे । वहीं वे भी राज-द्रोह के आरोप में गिरफ़ार कर लिये गये। केसरी के "देश का दुर्दैव" और "ये उपाय टिकाऊ नहीं है" लेखों को आपत्तिजनक बतलाकर भारतीय दण्ड-विधान की १२४ तथा १५३ धारा के अनुसार उन पर अभियोग लगाया गया। मुकदमा १३ जुलाई से लेकर बराबर २२ तक चलता रहा। जज थे तिलक के १८९७ वाले अभियोग के पैरोकार बै० डावर। सरकार की ओर से मि० ब्रैन्सन, मि० इनबैरेडिरी, मि० विनिंग मेनोन प्रख्यात योरोपियन बैरिस्टर थे और इधर स्वयं ये अपने मुक़दमे की पैरवी करते थे। जिस राज-नीति पांडित्य तथा बुद्धि विलक्षणता से इन्होंने अभियोग की पैरवी की थी, वह पढ़ते ही बनता है। हाईकोर्ट में बराबर ४ दिनों तक छः छः घंटे बोलते रहे थे। उनके भाषण को पढ़ने से एक बार अच्छे से अच्छे कानूनदाँ को भी चकित होना पड़ता है।

किन्तु वहाँ न्याय की बात पर कान कौन देता। कहा भी है—

बिगड़ती है जिस वक्त ज़ालिम की नीयत।
नहीं काम आती दलील और हुज्जत॥

वहाँ तो जज को किसी न किसी प्रकार इस राजनैतिक काँटे को मार्ग से निकाल फेंकना था।

ज्यूरी ने विरुद्ध सम्मति प्रकट की। इसपर तिलक महाराज ने जो शब्द कहे थे वे राष्ट्र के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। शब्द ये थे:—

"यद्यपि ज्यूरी ने मेरे प्रतिकूल अपनी सम्मति प्रकाशित की है तथापि मेरी अन्तरात्मा कहती है कि मैं पूर्ण निरपराध हूँ। मानवी शक्ति से कहीं अधिक सामर्थ्यवती दैवी शक्ति ही

राष्ट्र तथा मनुष्य-मात्र की भविष्यता पर अपनी सत्ता चलाती है। कदाचित् ऐसा हो ईश्वरी संकेत हो कि मेरे स्वतंत्र रहने की अपेक्षा कारावास में रहकर कष्ट भोगने से ही मेरे स्वीकृत कार्य का तेज बढ़े।"

अन्ततः रात के दस बजे जब प्रकृति तमिस्रा की काल-कोठरी में पड़ी पड़ी सिसक रही थी, जज ने उन्हें छः वर्ष कालेपानी और १०००) जुर्माने की सज़ा सुनाई। सज़ा का हुक्म सुनाते ही तिलक महाराज एक बंद गाड़ी में स्टेशन पर लाये गये। वहाँ स्पेशल तैयार थी। जो उन्हें लेती हुई बम्बई नगरी की गोद से छीनकर कालेपानी ले गई।

उधर तिलक महाराज जेल गये और इधर बम्बई की जनता क्षोभ से व्याकुल हो उठी। देश में शोक और संताप की काली घटा छा गई।

विलायत-गमन।

मंडाले की तप-कुटीर में ६ वर्ष का आध्यात्मिक जीवन समाप्त कर अपने अनन्य अध्ययन, मनन श्रमशील स्वाध्याय और प्रचुर पांडित्य के फल स्वरूप "गीता रहस्य" नाम का अनुपम ग्रन्थ जगत के पुस्तकालय को दान करने के हेतु लोकमान्य तिलक सन् १९१४ में स्वदेश में आये। मंडाले से जहाज़ से बंबई आये। जहाज़ ही पर से भारतमाता के लहराते हुए उत्तुंग श्यामल अंचल की झाँकी की, और कृतकृत्य हुए। भारतमाता ने भी अपने छः वर्षों के बिछुड़े लाल को प्रेम से कंठ लगाया।

जेल से आने के थोड़े ही दिनों पश्चात् तिलक ने अपने जीवनोद्देश्य स्वदेश सेवा के कार्यको फिर उसी जोर के साथ आरंभ किया।

इस समय तक भारत के राजनैतिक वायुमंडल में अनेक परिवर्तन आ गये थे। स्वदेश ने स्वराज्य का झंडा आगे कर लिया था। उधर योरप के स्वार्थपूर्ण भौतिक तथा नैतिक प्राङ्गण में रणचंडी वीभत्स नृत्य कर रही थी।

सन् १९१६ ई० में महाराष्ट्र में आपके दौरे हुए। अनेक स्थानों पर आपने स्वराज्य-संघ स्थापित किये। इस समय के आपके व्याख्यानों में एक अद्भुत जागृति और नई स्फूर्ति आ गई थी। महाराष्ट्र देश आपके व्याख्यानों से जाग उठा। उनके मुँहका यह वाक्य "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं उसे लेकर ही छोड़ूँगा" समस्त देशका विरुद-वचन बन गया।

इसी समय आपके बेलगाँव के संभाषण के संबंध में आप पर राज-विद्रोह का अभियोग लगाया गया, और पूना के ज़िला मैजिस्ट्रेट की कचहरी में २०।२० हज़ार की दो ज़मानतें दाख़िल करने के लिए मुक़दमा चलाया गया। ज़िला अदालत में ज़मानतें देनी पड़ीं, किंतु मुक़दमा हाईकोर्ट से ख़ारिज हो गया। फलतः होमरूल आन्दोलन वैध सिद्ध हुआ और उसे इस घटना से विशेष बल प्राप्त हुआ।

इसी वर्ष लखनऊ में कांग्रेस की प्रसिद्ध बैठक हुई। यह बैठक प्रसिद्ध इसलिए कही जाती है कि इसी में सूरत में उत्पन्न हुए विद्रोह का मूलोच्छेद किया गया, इसी बैठक में हिन्दू-मुसल्मानों की एक वाक्यता हुई, कांग्रेस लीग की स्थापना भी इसी में हुई थी जिसके द्वारा भारत के उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की माँग कार्यरूप में परिणत की गई।

इसी समय लोकमान्य तिलक के घोर शत्रु सर व्हेलेंटाइन शिरोल ने अपनी "भारतीय अशान्ति" (Indian unrest.) नामकी पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में शिरोल ने तिलक

के विषय में अनेक आपत्तिजनक बातें लिखी हैं। उसका कहना है—

If any one can claim to be truly the father of Indian unrest It is Balgangadher Tilak *

भारतीय अशांति का यदि कोई जनक कहा जा सकता है तो वह बालगंगाधर तिलक हैं। यदि शिरोल इतना ही लिखकर रह जाता तो कुछ विशेष आपत्ति की बात नहीं थी, किन्तु उसने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया था कि तिलक, उनका पक्ष, उनका आन्दोलन सभी राज-द्रोह दूषित तथा अत्याचार-मूलक है और उनका उद्देश्य ब्रिटिशराज्य की जड़ उखाड़ फेंकना है। ऐसे निष्कामवाद से देश तथा विदेश में ग़लत फ़हमी पैदा हो सकती थी। इसीलिए तिलक जीने उसका निराकरण करना ठीक समझा। सर शिरोल के ऊपर मान-हानि का दावा करने के विचार को जन्म मिला।

तिलक महाराज बड़ी तैयारी के साथ मुकदमा लड़ने के लिए इंगलैंड गये। सब प्रकार से यत्न किया। किन्तु कुछ भी सफलता न हुई। अंत में वही हार का हार हाथ आया। व्यर्थ की परीशानी और रुपयों का स्वाहा हुआ। सच तो यह है कि ऐसी सरकार से न्याय की आशा ही रखनी भूल है।

मुक़दमे का काम ख़तम होने पर राष्ट्रीय-पक्ष तथा महाराष्ट्र को होमरूल लीग की ओर से भेजे गये शिष्ट-मण्डल (deputation) के नेता की हैसियत से आप वहाँ लोकमत जागृत करने का काम जोरों से करने लगे। आपने ही भारतीय राष्ट्रीय-व्यय से संपादित इंगलैंड के "इंडिया" पत्र की कीर्ति बदल कर उसे राष्ट्रीय सभा का मुख पत्र बनाया। आपने

* *Indian unrest P. P. 41.*

वहाँ अनेक व्याख्यान भी दिये । मज़दूर दल ने आपका समुचित आदर किया ।

इस प्रकार काम करके आप सन् १९१९ के आदि में विलायत से स्वदेश लौटे । देश ने आपकी वर्ष-गांठ के उपलक्ष में एकत्रित एक लाख रुपयों की थैली आपको भेंट की । उन्होंने उसे ज्यों की त्यों होमरूल लीग के हवाले कर दिया ।

अंतिम दर्शन ।

भारत में आने पर लोकमान्य ने एक और महत्व-पूर्ण कार्य्य किया । यह आपका अंतिम कार्य्य था । आपने नवीन युग के अनुरूप राष्ट्रीयपक्ष को प्रजातंत्रवादीपक्ष में बदला । सन् १९१९ की अमृतसर कांग्रेस में लोकमान्य के धुरीणत्व में राष्ट्रीयपक्ष का यह प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका था कि सुधार-क़ानून अपूर्ण, असंतोषजनक और निराशामय है । उसी प्रस्ताव के अनुसार इस पक्षकी नीति निश्चित की गई थी । इस पक्ष की सम्मति है कि जितने अधिकार मिले हैं उन्हें लेकर फिर और अधिकार प्राप्त करने के लिए आन्दोलन जारी रखना चाहिए । इस पक्ष का अन्तिम ध्येय पूर्ण स्वराज्य का है । तिलक की राय थी कि कौन्सिलों में जाकर वैध रीति से आन्दोलन किया जाय ।

तिलक इस विचार को कार्यरूप में लाने को सोचही रहे थे, देश के नवीन आन्दोलन असहयोग पर अभी निर्णयात्मक बिचार करना बाकी था, देशकी पराधीनता-शृंखला तोड़ने का जीवन लक्ष्य अभी अधूरा ही था कि ता० २३ जुलाई को उन्हें कफ़ज्वर हो आया । दिन पर दिन दशा बिगड़तीही गई । २९ को सन्निपात का समावेश हो गया । दशा शोचनीय देख पड़ने लगी । तब उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर गीता पाठ कर-

वाया। पास में गीता की एक प्रति रक्खी हुई थी। उसमें से श्रीकृष्ण का चित्र लोकमान्य को दिखलाकर एक सज्जन ने पूछा "यह क्या है?" इतनी बात कर्णसुधा में पड़ते ही लोकमान्य की दृष्टि चित्र की ओर संलग्न हुई। वह एकटक देखने लगे। क्षीण स्वर में कहा—"यह श्रीकृष्णचन्द्र का चित्र है। इनका चरित्र सर्वसाधारण के लिए अनुकरणीय और अनुसरणीय है।" तत्पश्चात् आपने गीता का यह श्लोक पाठ किया—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

और कृष्ण भगवान् की पवित्र मूर्तिको प्रणाम करके आँखें मूँद लीं।

इस प्रकार ता० ३१ जुलाई सन् १९२० की रात के १२ बजकर ४० मिनट पर भगवान् की अवतार लीला समाप्त हुई। देशका जीवन-प्रदीप बुझ गया, भारत माता के चन्द्र-भालका तिलक धुल गया, राष्ट्र के जीवन नाटक के सूत्रधार का पाठ समाप्त हो गया।

लुट गया देशका लाल तिलक।
धुल गया जननि का भाल तिलक॥

भगवान् तिलक के शुभ सन्देश।

१—"यदि तुम स्वाधीन होना चाहो तो स्वाधीन हो सकते हो, और अगर स्वाधीन होना नहीं चाहते हो तो नीचे गिरोगे और सदा गिरेही रहोगे। स्वतंत्र होने के लिए हथियार उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारे पास लड़कर विरोध करने

का बल नहीं है तो क्या तुममें इतना आत्मसंयम और त्याग भी नहीं है कि तुम विदेशीय सरकार को सहायता देना बंद करदो ? अगर है तो तुम कल से ही स्वाधीन हो ।"

२-"स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है, और उसे प्राप्त करके ही मैं छोड़ूँगा ।"

३-"अपने घर का प्रबंध करना तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा उसका उस समय तक अधिकारी नहीं हो सकता जब तक कि हम नाबालिग़ या पागल न हों।"

४-"वेदान्त कहता है कि अगर मनुष्य यत्न करे तो वह 'ईश्वर' होसकता है। अगर ऐसा है तो फिर तुम कैसे कहते हो कि हम स्वराज्य नहीं पा सकते।"

५-"अगर स्वराज्य के अधिकार मुसल्मानों राजपूतों या छोटी सी छोटी अन्त्यज जाति को दे दिये जावें तो मुझे कुछ परवाह नहीं । क्योंकि उस समय हमारा आपस का मामला रहेगा। इस समय तो केवल एक ही फ़िकर रहनी चाहिये, वह यह कि नौकरशाही के हाथों से सत्ता अपने हाथों में किस प्रकार आसकती है।"

६-"अब विरोध तथा प्रार्थना करने के दिन गये। अब हमें स्वावलम्बन के तत्व को धारण कर दिखा देना चाहिए कि हम सब प्रकार से योग्य हैं। यही सफलता की कुंजी है।"

७-"आपत्ति से डरना मनुष्यत्व को खो बैठना है। आपत्तियाँ हमें बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। कठिनाइयाँ हमारे हृदय में साहस तथा निर्भीकता उत्पन्न करतीहैं। जिनसे सुरक्षित होकर हम भारी से भारी कष्टों का सामना कर सकते हैं। वह

जाति, वह राष्ट्र, जिसके मार्ग में कष्ट नहीं है, उन्नति नहीं कर सकती। इसलिए हमें कष्टों का स्वागत करना चाहिए।"

८-"यदि तुम देश को एक सूत्र में ग्रथित करना चाहते हो तो देश भर में एक राष्ट्र भाषा का प्रचार करो। मेरी समझ में "हिन्दी" को राष्ट्र भाषा का आदर स्थान देना चाहिए।"

९-"जिसने देश की पूज्य वेदी पर अपने जीवन को बलिदान कर दिया है उसी महान आत्मा के लिए मेरे मानस-मंदिर में स्थान है। जिसके अभ्यन्तर में मातृसेवा का पवित्र भाव जागृत है, वही माता का सच्चा सपूत है।"
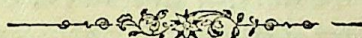
महात्मा गांधी ।

जन्म और शिक्षा ।

शान्तिप्रिय असहयोग संग्राम के सेनानायक, भारत के भाग्य-विधायक महाभाग महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधीजी का जन्म पोरबन्दर में २ अक्तूबर सन् १८६९ को हुआ था। आप अपने पूज्य पिता करमचन्द गांधी के तीन लड़कों में से सबसे छोटे हैं।

आपके पिता पोरबन्दर के दीवान थे। आत्माभिमान और धार्मिकता के पवित्र भाव उनके अन्दर कूट कूट कर भरे थे। रियासत के दीवान होते हुए भी चाटुकारिता के दोष से उनका दामन छू तक नहीं गया था। आपकी स्नेहमयी जननी भी कुछ कम धर्मिष्ठा न थीं। आपके सुयोग्य जनक और धर्म-परायणा जननी के सुचरित्रों का आपके बाल्य-जीवन तथा चरित्र-गठन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। कहना नहीं होगा कि इस समय गांधीजी में जितने चमत्कारपूर्ण गुण हैं, उन सबका बीजारोपण जननी के ही क्रोड़ में हुआ था।

सात वर्ष की अवस्था तक आप पोरबन्दर की एक देहाती पाठशाला में ही अपनी मातृभाषा गुजराती की शिक्षा प्राप्त करते रहे। घर पर धार्मिक पुस्तक पढ़ाने के लिए एक शिक्षक भी नियत थे। संयोग वश आपके परिवार को पोरबन्दर से राज-कोट जाना पड़ा। राजकोट में आप एक वर्नाक्युलर स्कूल में भर्ती हुए। तीन वर्ष की शिक्षा समाप्त करके आप काठियावाड़ हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए और इसी स्कूल से सन् १८८६ में आपने मैट्रिकुलेशन-परीक्षा पास की।

विलायत-यात्रा ।

मैट्रिक परीक्षा पास करके महात्मा गांधी ने ग्रेजुएट होने की इच्छा से भावनगर के कालेज में प्रवेश किया। अभी कुछ ही दिनों कालेज में पढ़ते हुए थे कि एक विलायत प्रत्यागत ब्राह्मण सज्जन ने आपको विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने की सम्मति दी। आप देश-दर्शन के बड़े अभिलाषी थे। अतः भावी उन्नति के उद्रेक ने ब्राह्मण महाशय की बात मानने पर इन्हें बाधित किया। विलायत जाना निश्चित हुआ।

आपके बड़े भाई तो इस विचार से सहज ही में सहमत होगये। किन्तु जब बात धर्म-प्राण-माताजी के पास पहुँची, तो उन्होंने अपनी असहमति प्रकट की। गांधीजी ने तब माताजी को बहुत समझाया बुझाया। अंत में माताजी ने आपसे मद्य न पीने मांस न खाने और पर-स्त्री-गमन न करने की पूर्ण प्रतिज्ञा कराके आप को विलायत जाने की आज्ञा प्रदान की।

भारत से चल कर सितम्बर सन् १८८८ में महात्मा गांधी लंडन पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही आपको बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा। वहाँ का रीति रस्म आपको बहुत ही घृणित तथा वहाँ के लोगों का व्यवहार अत्यन्त अप्रिय मालूम हुआ कारण इसका यह था कि जब वे बाजार में निकलते तो लोग इनके वस्त्रों और व्यवहार आदि पर खूब कहकहे मारा करते थे। अंत में इन्होंने इंगलेंड के रहन सहन से परिचित्त अपने एक मित्र को तार देकर पास बुला लिया। लेकिन मित्र के आगमन ने आपके विलायत-जीवन को और भी अप्रिय और अशांत बना दिया। क्योंकि प्रिय महोदय तो पक्के विलायती

निकले। न उन्हें मांस खाने से परहेज था और न स्त्री सहवास से घृणा ही और इधर महात्मा जी प्रतिज्ञा-बद्ध होकर गये थे। अतः स्वभाव और आचार भेद होना बहुत ही स्वाभाविक था। निदान, आपको अपने मित्र के संसर्ग से अनिच्छा उत्पन्न होगई और फिर आपने अपनी पुरानी चाल अख़ियार की। आपकी चाल ढाल पहले ही काफ़ी सादी थी, अब आपने और भी अपना जीवन सादा बना लिया। लण्डन सरीखे नगर में आप केवल ६०) में अपना निर्वाह करने लगे।

इस प्रकार आपने तीन वर्ष विलायत में बिताये, बैरिस्टरी की परीक्षा दी, अंगरेजों के संसर्ग में रहे, किन्तु वहाँ के वायु-मंडल का आप पर तनिक भी प्रभाव न हुआ। इसका मूल श्रेय आपके गीता-पाठ को है। गीता ने ही आपके अज्ञानान्धकार को दूर कर के विचारों में यह महत्व-पूर्ण परिवर्तन और परिष्कृति ला दिया, जिससे आज आपकी गणना-बड़े बड़े महात्माओं में होती है।

बैरिस्टरी और दक्षिण अफ्रिका की यात्रा।

विलायत से लौटकर आने के समय तक माताजी का भी स्वर्गारोहण हो चुका था। अतः अब राजकोट जाने के लिए आपके मन में किंचिद्मात्र भी उत्साह बाकी नहीं रह गया था। फिर भी घर था। अतः राजकोट जाना परमावश्यक था। बम्बई से राजकोट जाते समय नासिक में महात्मा गांधी को विलायत-यात्रा के लिये प्रायश्चित्त भी करना पड़ा था। राजकोट में थोड़े दिनों तक रह कर आप बंबई वापस आये और वहीं रहकर बैरिस्टरी करने लगे। डेढ़वर्ष तक इसी प्रकार बैरिस्टरी करते रहे कि भवितव्यता ने इन्हें दक्षिण

अफ्रीका की ओर प्रयाण करने का संकेत किया, देश सेवा ने आमंत्रित किया और अपनी ओर इन्हें खींच लिया।

पोरबंदर में एक महाजन की कोठी थी, जिसकी एक कोठी प्रिटोरिया (दक्षिण अफ्रीका) में भी थी। उस कोठी का प्रिटोरिया में एक बड़ा मुक़दमा था। महाजन ने उसी मुक़दमे के संबंध में महात्मा गांधीके भाई की मारफ़त महात्माजी से प्रिटोरिया जाने के लिए कहलाया। महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका जाना स्वीकार किया। तदनुसार आप सन् १८९३ ई० में भारत से दक्षिण-अफ्रीका चले।

डरबन पहुँचते ही आपने वहाँ से सुप्रीम-कोर्ट में बैरिस्टरी करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए एक प्रार्थनापत्र उपस्थित किया। वहां की लॉ सोसायटी ने यह कहकर आपके उस प्रार्थनापत्र का विरोध किया कि यहाँ की अदालतों में किसी काले आदमी को बैरिस्टरी करने का अधिकार नहीं है। परन्तु सुप्रीम कोर्ट ने लॉ सोसायटी की इस अपमानजनक बात की उपेक्षा करके आपको बैरिस्टरी करने की आज्ञा प्रदान की।

इसी बीच में एक दिन एक आवश्यक कार्य से राह की गाड़ी से आप प्रिटोरिया जा रहे थे। आपके पास पहले दर्जे का टिकट था। फिर भी गोरे गार्ड ने आपको पहले दर्जे में बैठने से मना किया। किंतु आप नहीं माने और इस अनुचित बात का विरोध करने के लिए उसी दर्जे में बैठे रहे। इस पर गार्ड गाड़ी में घुस आया और आकर आपको बलात्कार गाड़ी से निकाल दिया, सामान भी फेंक दिया। गाड़ी छूट गई। फलतः कड़ाके की जाड़े की रात आपको वेटिंग-रूम में ही बितानी पड़ी।

काले गोरे में इतना बड़ा भयंकर भेद-भाव, ब्रिटिश उप-निवेश में भारतवासियों का इस प्रकार घोर अपमान गोरों का इतना अहंभाव और कालों का इतना पतन, महात्मा की चिन्ता के कारणस्वरूप हुए। स्वदेशाभिमानी गांधी ने आत्म-बल पर खड़े होकर आत्मविश्वास का आश्रय लेकर देश-भाइयों के लिए आत्म-बलिदान करना निश्चित किया और इस बात का यत्न आरंभ किया कि अफ्रिका में भारतवासियों का अपमान न होने पावे और उनके दूसरे कष्ट भी दूर हों।

दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों की दुर्दशा

और

महात्मा गांधी का कार्य।

भारतवर्ष से दो प्रकार के मनुष्य दक्षिण अफ्रीका में जाते थे। एक तो मज़दूर और दूसरे अन्य व्यवसाई लोग। मज़दूरों के लिए दक्षिणी अफ्रीका की सरकार और मालिक के नियम अत्यंत कठोर और अन्यायपूर्ण थे। भारत से रवाना होने के पूर्व मज़दूर को इस बात की लिखा पढ़ी कर देनी पड़ती थी कि मैं पाँच वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में ही काम करूँगा। उसे स्वयं मालिक चुनने का भी अधिकार नहीं होता था। जिसके यहाँ नियुक्त कर दिया जाय वहीं रहकर काम करना पड़ता था। स्वामी की शिकायत करने पर उसे दण्ड दिया जाता था। बीमारी की दशा में उसका पूर्ण वेतन काट लिया जाता था। गर्ज़ कि अनेक अन्याय-पूर्ण पैशाचिक बंधनों के अन्दर रहकर बेचारे भारतीय श्रमशीलों को-दिन रात सर का पसीना पैर और पैर का सर करना पड़ता था—ऊपर से कोड़े और बेंत खाने पड़ते थे। फल यह होता था कि बहुतेरे कुली

अपने नरपिशाच मालिकों और राक्षसी गोरी सरकार के अमानुषिक अत्याचारों से आजिज़ आकर आत्म-हत्या तक कर डालते थे।

कुली तो ख़ैर कुली रहे. पेशे वाले भारतीयों—जैसे डाक्टर, दूकानदार, शिक्षक आदि—के साथ भी वहाँ के गोरे निवासियों का व्यवहार अत्यंत जघन्य और अनुचित होता था। वहाँ के क़ानून और समाज दोनों ही यह चाहते थे कि इस देश में काले आदमी आकर न बसें। केवल हमारी मज़दूरी करें और घर लौट जाँय। उनकी समझ में सारा संसार गोरों का विलास भवन था और कालों का जन्म एक मात्र उनकी सेवा के लिए हुआ था।

आज भी संसार के जिस जिस कोने में यह स्वार्थ और अभिमान में चूर यह गोरी जाति निवास करती है वहाँ वहाँ इनके ठीक ऐसे ही भाव बने हुए हैं। गोरे संसार में अपने को सब से आचारवान्, विचारवान् और बलवान् समझते हैं। उनका अभिमान है कि ईश्वर ने उन्हें निर्बलों के हाथों में बलात्कार जंजीर डाल कर उनके हाथ पैर बाँधकर उनपर निर्द्वन्द शासन करने के लिए भेजा है। उनके सामने कोई आँख नहीं लड़ा सकता। चाहे वे सत्ता का बेतरह अपमान करें, चाहे वे मनुष्यता का गला दबायें, चाहे वे ईश्वर के साम्य-सिद्धान्त की आँखों में धूल झोंक कर अन्याय का खून पीयें, उन्हें कोई कहने वाला नहीं है।

तात्पर्य यह कि काले आदमियों के लिए दक्षिण अफ्रीका के प्रदेश नरक तुल्य ही थे, जिनके द्वार पर गोरे सिपाहियों का पहरा था और जो भारत के अभागों को भीतर घुसने भी देना न चाहते थे। सबका निचोड़ तो यह है कि दक्षिण

अफ्रीका के गोरे निवासी भारतवासियों को देश में किसी प्रकार बसने देना नहीं चाहते थे।

जिस मुक़दमे को पैरवी के लिए महात्मा गांधी विलायत गये थे वह पूरा हो चुका था। अब आप भारत यात्रा का विचार करने लगे थे। चलने के पूर्व आप डरबन पहुँचे। वहाँ कतिपय सज्जनों ने आपकी बिदाई के उपलक्ष में सभा करनी चाही। सभा के दिन, कुछ ही थोड़े पहले आपको "नेटाल-मर्करी" नामक समाचार पढ़ने को मिल गया। उसमें आपने देखा कि शीघ्रही औपनिवेशिक पार्लिमेन्ट में एक ऐसा बिल उपस्थित होने वाला है जिसके अनुसार भारतीयों को पार्लिमेन्ट और म्युनिसिपैलिटी आदि के सभासद निर्वाचन में सम्मति (vote) देने का अधिकार न रह जायगा। ब्रिटिश नागरिकता के इस थोड़े से अधिकार का भी भारतीयों के हाथ से छिन जाने की शंका ने महात्माजी के भारत-प्रयाण के विचार को कम से कम थोड़े दिन के लिए तो स्थगित ही कर दिया।

आपने अपनी बिदाई वाली सभा में उपस्थित लोगों को उक्त आपत्ति के रोकने का उत्तेजना-पूर्ण उपदेश सुनाया। आपके आदेशानुसार उसी समय अपनी औपनिवेशिक पार्लिमेन्ट के पास बिल की तिथि को थोड़े समय के लिए हटा देने के लिए तार दिया गया। साथ साथ बहुत से लोगों से हस्ताक्षर कराकर एक प्रार्थनापत्र भी प्रेषित किया गया। किन्तु, इस हाय तोबा का कुछ भी फल न हुआ। औपनिवेशिक सरकार ने प्रार्थनापत्र पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। बिल बहुमत से पास होगया। इतने पर भी महात्मा गांधी हताश नहीं हुए। एक कर्मवीर आशावादी की भांति आपने तुरन्त एक

दूसरा प्रार्थनापत्र तैयार किया और उसपर दस हज़ार आद-मियों के दस्तखत कराकरउसे इंगलेण्ड स्थित औपनिवेशिक मंत्री के भी पास भेज दिया। फलतः बिल प्रचलित न हो सका। जब इससे हारे तो गोरों ने एक दूसरा क़ानून बनाया और उसे पासही करा लिया। इससे उनका उद्देश्य सिद्ध हो गया।

इसी बीच में महात्मा गांधी ने भारतीय अधिकाररक्षा के लिए स्थायी संस्थायें भी स्थापित कीं और उन्हीं के द्वारा लोकसेवा का काम करने लगे। सुप्रीमकोर्ट में बैरिस्टरी भी करते थे और इधर भारतीय बंधुओं के कष्टमोचन का यत्न भी। इसी समय आपने लोगों को वैध-आन्दोलन की शिक्षा भी देना आरंभ कर दिया था। थोड़े से उत्साही नवयुवक कार्य-कर्त्ताओं को चुन लिया था और उन्हें सार्वजनिक-सेवा का पाठ पढ़ाया करते थे।

आपके सत्यनिष्ठा-पूर्ण सदाचार, त्यागमय व्यवहार और आदर्श देश-सेवा के भावों का लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि धीरे २ लोग आपको देव तुल्य मानने लग गये थे। तुर्रा यह है कि बहुत से योरोपियन भी वहाँ ऐसे थे जो मनमें आपके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते थे।

इस प्रकार दो वर्ष रहकर आपने दक्षिण अफ्रीका में बहुत कुछ कार्य किया था।

भारत-आगमन।

महात्मा गांधी के भारत में पहुँचने के बहुत पहले ही आपकी कीर्तिकौमुदी भारत के गगन प्रान्त में छिटक चुकी थी, आपके कार्य-कलाप का शंखनाद देश में पूर्णरूपेण-हो चुका था। अतः जिस समय सन् १८९६ में अपने बाल बच्चों को

दक्षिण अफ्रीका लेजाने के लिए आप भारत पधारे। उस समय भारतवासियों ने बड़ी धूमधाम से आपका आगत स्वागत किया।

भारत आकर आप चुप नहीं बैठे रहे। प्रत्युत् बंबई मदरास पूने आदि स्थानों में सभायें करके दक्षिण अफ्रीका में पीड़ित भारतवासियों की आर्त अवस्था का मानचित्र जनता के सामने रखने का यत्न किये। अनेक प्रभावशाली व्याख्यान हुए। व्याख्यानों की प्रतियाँ छापीं और बेची भी गईं। इस व्याख्यान के संबंध में रूटर ने नेटाल जो तार भेजा था वह बिलकुल उटपटांग था। उसमें असत्य का अधिक अंश था। जब यह समाचार नेटाल पहुँचा तब नेटाल के गोरों में स्वभावतः ही बहुत कोलाहल और कुहराम मचा। उन लोगों ने अपना क्रोध प्रकाशित करने के लिए सभायें कीं, जिनमें महात्मा गांधी को बहुत उलटी सीधी बातें कही गईं। उन दिनों गांधी जी कलकत्ते में थे और एक बड़ी सभा संगठित करने की योजना कर रहे थे। इतने में नेटाल का एक तार मिला जिसमें लिखा था कि शीघ्र ही पार्लिमेंट की बैठक होने वाली है, अतः आप तुरंत चले आवें। तदनुसार गांधी जी 'फरलैंड' से १८ नवम्बर को रवाना हुए। साथ ही "नायर" नामक एक और जहाज चला था जिसमें छः सौ भारतवासी यात्री थे। दोनों जहाज साथ ही डरबन पहुंचे।

दोनों स्टीमरों को साथ आते देख गोरों का पारा और भी ऊपर चढ़ गया। कुछ दुष्टों ने यह अफ़वाह फैला दी कि महात्मा गांधी योरोपियन कारीगरों को क्षति पहुँचाने के लिए अपने साथ भारतवर्ष से अच्छे अच्छे कारीगर ला रहे हैं। इस मिथ्यावाद का यह परिणाम हुआ कि जहाजों के

किनारे लगने तककी भी आज्ञा नहीं मिलती मालूम देने लगी। जहाज़ के कप्तानों ने नोटिसें दीं, हरजाने का दावा करने की धमकी दी, तब कहीं जाकर किनारे लगने की आज्ञा प्राप्त हुई थी। अब प्रश्न आया लोगों के उतरने का। यह प्रश्न भी कुछ कम विकट नहीं था। किसी किसी प्रकार सरकार ने गोरों की भीड़ हटाई और लोगों के उतारने का प्रबन्ध किया। महात्मा गांधी नेटाल के प्रसिद्ध वकील मि० लाटन के साथ जहाज से उतर कर चल पड़े। अपनी स्त्री तथा बच्चों को तो आप पहिले ही रुस्तम जी नामक अपने एक मित्र के पास भेज चुके थे। रास्ते में भीड़ में दोनों आदमियों का साथ छूट गया। महात्मा गांधी अकेले पड़ गये। इतने में कुछ दुष्ट गोरों ने आप पर प्रहार किया। संयोगवश पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट वहाँ आ पहुँचा। दौड़कर गांधी को बचा लिया और भीड़ फटने पर एक मित्र के घर पहुँचा दिया।

कुछ दिनों के बाद गोरों का यह कोप कुछ ठंढा हुआ। जब भारत में दिये हुए भाषणों की सच्ची रिपोर्ट अफ्रीका पहुँची तो उसे देखकर कुछ अंगरेजों के विचार पलट गये। अनेक अंगरेजों ने घर आकर महात्माजी से क्षमा-याचना की, कितनों ही पत्रों ने पीछे से प्रायश्चित्त किया, गर्ज़ महात्मा के ऊपर से बहुतही शीघ्र भयका बादल टल गया।

बोअर युद्ध में सेवा-शुश्रूषा।

दक्षिण अफ्रीका में बोअर नामकी एक जाति निवास करती थी। यह जाति अंगरेजों से अत्यंत असंतुष्ट थी। कारण यह था कि अंगरेज़ों के कारण उनकी स्वतंत्रता तथा व्यापार आदि में अनेक बाधाएँ पड़ती थीं। इसीलिए सन्

१८८० में एक बार दोनों में मुठभेड़ भी हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त अंगरेज़ लोग बोअरों के ट्रान्सवाल प्रदेश में भी अपना अधिकार जमाना चाहते थे। यह बात बोअरों को बहुत खटकी थी। ट्रान्सवाल पार्लिमेंट के पाल क्रूगर नामक सभापति ने नये नये कर लगाकर अंगरेज़ों को विफल करना आरंभ किया। अंगरेज़ क्रुद्ध हुए। दोनों ओर युद्ध की आयोजना होने लगी। अन्ततः अक्टूबर सन् १८९९ ई० में बोअर-युद्ध आरंभ ही हो गया।

महात्मा गांधी ने एक राजभक्त प्रजा के रूप में इस संकट के समय सरकार की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा। इसी कर्तव्य बुद्धि से प्रेरित होकर आपने भारतवासियों का एक दल एकत्र करके सेना में भरती होने के लिए अपने को समर्पण करना चाहा। किंतु वहाँ की व्यवस्थापिका-सभा के मि० जेमसन सभासद ने उन्हें सेना में लेने से अस्वीकार किया। तब गांधी ने और किसी प्रकार की सेवा के लिए आज्ञा चाही। इसे भी अंगरेजी मतज्ञ अस्वीकार प्राय कर चुके थे। खैर, अंत में भारतवासियों के सुपुर्द यह काम हुआ था कि युद्ध-आहत लोगों को उठाकर रण से ७ मील की दूरी पर चीवली के अस्पताल में पहुँचाया करें। महात्मा गांधी ने सेवा के इस अमूल्य अवसर को हाथ से जाने देना अच्छा नहीं समझा। बड़ी मुस्तैदी दक्षता और भक्ति से इस काम को बराबर करते रहे। इससे गोरे सैनिकों तथा अधिकारियों ने महात्मा गांधी और आपके अनुयायियों के कामों की समय समय पर पेट भर सराहना की थी।

बोअर-युद्ध समाप्त हुआ। बोअर लोग हारे और अंगरेज़ों की जीत हुई। अब तो महात्मा गांधी तथा आपके

अनुयायियों के दिलों में यह आशा बँधी कि नई सरकार के शासन समय में समस्त अत्याचारों का सदा के लिए समूल अंत हो जायगा। यह इच्छा कहाँ तक फलवती हुई, इसका पता आगे के प्रकरणों से लगेगा।

अन्यान्य कार्य।

बोअर-युद्ध समाप्त हो गया महात्मा गांधी यह समझ कर कि कम से कम हमारी सेवाओं का इतना फल अवश्य होगा कि भविष्य में भारतवासियों पर किसी तरह जुल्म न किया जायगा, स्थायी रूप से भारत में रहने का विचार करके यहां चले आये। चले तो आये, किन्तु आने के थोड़े ही दिनों बाद उनकी धारणा भ्रमपूर्ण सिद्ध होती मालूम पड़ी। उन्हें मालूम हो गया कि नई सरकार बोअरों की सरकार से भी गई बीती थी। अतः महात्मा गांधी को फिर दक्षिण अफ्रीका जाना अनिवार्य हुआ। इस बार आप सन् १९०३ में प्रिटोरिया पहुँचे।

वहाँ पहुँच कर आपने वहाँ की दशा पहिले से बुरी पाई। अतः दुःखमोचन के कार्य में लग गये। अधिकारियों को यह बात पहिले से भी अप्रिय प्रतीत हुई। उन्होंने इस बार गांधी को बुलाकर उन्हें फटकार भी बताई थी तथा प्रकारान्तर से यहाँ तक भी कह डाला था कि यहाँ आपकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपका भारत लौट ही जाना अच्छा है। लेकिन आप इन बंदर घुड़कियों से कब डरने वाले थे, एक न सुना और कर्मवीर की भांति डटे काम करते रहे।

एक डेपुटेशन भेजने का विचार ठहरा। लेकिन प्रिटोरिया में भी वही बात हुई जो नेटाल में हुई थी। मि० चेम्बरलेन ने कहा कि यदि डेपुटेशन में गांधी भी होंगे तो मैं डेपुटेशन से नहीं मिलूँगा।

इससे सिद्ध होता है कि वहाँ की सरकार गांधी के नाम से दिन पर दिन कितना चिढ़ती जाती थी किन्तु महात्मा गांधी ने अन्त समय तक लड़ने का निश्चय कर लिया था, आप कब घबराने वाले थे। आपने किसी तरह प्रिटोरिया के सुप्रीम कोर्ट में बैरिस्टरी करने का अधिकार प्राप्त कर लिया और उसी को केन्द्र बनाकर काम करना निश्चित किया।

आपने आवश्यकता देखकर सन् १६०३ में एक छापाख़ाना ख़रीदा और "इंडियन ओपीनियन (भारतीय सम्मति) नामक एक समाचार पत्र निकालना आरंभ कर दिया। यह समाचारपत्र उन आपत्ति के दिनों भारतवासियों के बहुत काम आया था।

इसी बीच में १६०४ में जोहान्सबर्ग में बहुत ज़ोरों का प्लेग आया। गांधी ने यहाँ भी बहुतही प्रशंसनीय सेवा की। प्लेग शांत होते ही आप नेटाल आये। वहां आपने फीनिक्स नामक स्थान में एक उपत्यका के नीचे प्रायः सौ एकड़ का एक हरा भरा मैदान ख़रीदा और वहीं सपरिवार रहने लगे। उस स्थान को आपने ऐसा सुन्दर बना दिया था कि देखने से बिलकुल प्राचीन भारतीय ऋषियों के आश्रम की तरह मालूम देता था। आज वहाँ न केवल भारतवासी ही हैं, बल्कि महात्मा जी से सहानुभूति रखने वाले अंगरेज भी रहने लग गये हैं। वहाँ एक आदर्श विद्यालय भी स्थापित हो गया है।

सन् १६०६ में ज़ुलू लोगों ने विद्रोह किया था। उस समय भी महात्मा ने अपने साथियों को लेकर प्रशंसनीय कार्य किया था। आपके इस तथा आन्यान्य उत्तम कार्यों का बहुत से अंगरेज़ों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा था। जिनमें से अनेक आपके भक्त बन गये थे।

सत्याग्रह--संग्राम।

सन् १८८५ ई० में ट्रांसवाल में एक कानून बना था जिसके अनुसार यह तय हुआ था कि जो एशियाई इस देश में व्यापार करें वे पहिले एक नियत फ़ीस देकर अपनी रजिस्ट्री करा लें और नगरों के कुछ विशेष भागों में ही रहें ताकि उनके संसर्ग आदि से गोरों में किसी प्रकार का रोग न फैले।

बोअर युद्ध की सेवा का पुरस्कार कहाँ तक मिलता, उलटे युद्ध समाप्त होने के थोड़े ही दिनों बाद उक्त नियम फिर से जारी किया गया। भारतवासियों ने सुप्रीमकोर्ट में इसकी अपील की। फल यह हुआ कि भारतवासियों को स्वतंत्र रूप से व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त हुई। इस निर्णय पर वहाँ के गोरे निवासी बहुत ही क्षुब्ध हुए थे। परिणाम में सन् १९०६ में एक नई आज्ञा का मसौदा तैयार हुआ, जिसमें यह कहा गया था कि १८८५ का तीसरा कानून फिर से सुधारा जाय और समस्त भारतीय पुरुष, स्त्री तथा बच्चों की रजिस्ट्री आवश्यक कर दी जाय।

इससे भारतवासियों पर मानो वज्राघात हुए। वे अत्यंत क्षुब्ध हुए और इस भीषण दुर्दशा से बचने के लिये प्रयत्न आरंभ कर दिया। पहले तो भारतीय नेता सरकार के उच्चाधिकारियों से मिले, विरोध सभाएँ कीं और चाहा कि उक्त नियम रद्द कर दिया जाय। अंत में जब कुछ आशापूर्ण फल होते न देखा तो वहाँ के समस्त भारतवासियों ने एक सभा-संगठित करके यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हम सब लोग जेल जाना स्वीकार करें, परन्तु इस नीच नियम के अनुसार अंगूठे के छाप देने तथा रजिस्ट्री कराने न जायँगे। प्रस्ताव

सर्व सम्मति से स्वीकृत हो गया। सब ने सत्याग्रह करने की शपथ ली। शान्ति-प्रिय भारतवासियों ने सत्याग्रह-संग्राम आरंभ करने से पूर्व एक डेपुटेशन इंग्लैण्ड भेजना अधिक उपयुक्त समझा।

मिस्टर अली को साथ लेकर महात्मा गान्धी गये और वहाँ साम्राज्य-सरकार के अधिकारियों से मिलकर तथा सर्व साधारण में व्याख्यान देकर आन्दोलन करने लगे। आपके आन्दोलन का फल यह हुआ कि सम्राट् ने इस विषय का वचन-दान दिया कि जब तक दक्षिण अफ्रीका में वैध-शासन (Constitutional government) स्थापित नहीं हो जायगी तब तक यह क़ानून जारी नहीं होगा।

कुछ दिनों तक तो मामला ज्यों का त्यों ही रहा। इसी बीच में दक्षिण अफ्रीका में वैध-शासन स्थापित हो गया। दक्षिण में नई सरकार तथा नई पार्लिमेण्ट की स्थापना हो गई। उस नई सरकार ने सर्व सम्मति से उक्त क़ानून पास कर डाला। जुलाई सन् १९०७ में नये ऐक्ट के अनुसार कार्यारंभ हुआ। गोरों के पौ बारह रहे। काले बुरी तरह मारे गये। ऐसे अवसर पर महात्मा जी ने भारतीयों की आत्मरक्षा का भार अपने ऊपर लिया। आपने लोगों को समझा दिया कि यदि इस समय हम लोग पीछे हटेंगे तो अपनी जाति तथा देश को अपमानित और कलंकित करने के भागी होंगे। साथ ही भविष्य में अनेक अत्याचार-पूर्ण नियम बनने लग जायँगे और तब उनके अनुसार आचरण करना भी अत्यावश्यक हो जायगा। अतः अपनी मातृ-भूमि की लाज रखने तथा अपने देश-बन्धुओं को अपमान से बचाने के लिये सब प्रकार के कष्ट सहन करने के लिये तैयार हो जाना चाहिए और

यहाँ के स्वार्थान्ध गोरे निवासियों को सत्याग्रह करके दिखला देना चाहिए कि हम लोगों में वस्तुतः कितना आत्म-बल है। महात्मा गान्धी के इस उपदेश ने जादू का काम किया। समस्त भारतवासियों ने रजिस्ट्री न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और इसके लिए जेल जाना तथा प्राण-दण्ड तक सहन निश्चित किया। इस प्रकार सत्याग्रह-संग्राम का जन्म हुआ।

भारतीयों ने इस संग्राम को बड़े जोश और जीवन के साथ आरंभ किया। थोड़े ही दिनों में नई सरकार के होश उड़ गए और उसे क़ानून को कुछ दिनों के लिये स्थगित करना पड़ा। सरकार ने क़ानून को रद्द करने का बचन-दान भी दिया था, किन्तु सरकार ने अपने बचन का पालन नहीं किया, निदान भारतवासियों ने फिर सत्याग्रह शुरू किया। उनके दल के दल इस प्रकार जेल में जाने लगे मानों वे तीर्थ-यात्रा के लिये जा रहे हों। थोड़े ही दिनों में ऐसा हो गया कि जेल के जेल भारतवासियों से भर गये, उनके स्वाभिमान का सुभग संगीत जेल की जंजीरों के साथ मिलकर आरंभ होने लगा, जीवन बीणा बज उठी, कानों में झन्कार पहुंची, जागृति और उमंग से अंग अंग उछलने लगे। गर्ज़ कि सन् १९०८ के आरंभ तक अनेक भारतवासी जेल भेजे जा चुके थे। स्वयं महात्मा गांधी को भी दो मास की सख़्त सज़ा हुई। महात्मा गांधी के जेल जाने का यह दूसरा अवसर था। इससे पहिले भी आप दो महीने जेल काट चुके थे। इस बार आपको जेल में बहुत ही कष्ट दिया गया था। आपको तथा आपके साथियों को खोदने का काम मिला। आप लोगों से कुछ भूलें हुईं, इस पर जेलर ने कोड़े भी लगाये। कुदाल चलाते चलाते महात्मा

गान्धी के हाथों में बेतरह छाले पड़ गये थे। जेल में आपको पाखाना तक उठाना पड़ा था। तात्पर्य यह कि भारतवासियों को जेल में अनेक कष्ट पहुँचाये गये—गांधीजी ने भी अनेक कठिनाइयाँ झेलीं, जिनके अन्दर से साफ़ २ निकलना एक दूसरे के लिए बहुत ही कठिन काम था। जेल से लौटते ही महात्मा गान्धी एक डेपुटेशन लेकर इंगलैण्ड गये और कुछ दिनों तक आन्दोलन द्वारा लोकमत जागृत करने का काम करते रहे। जब कुछ विशेष सफलता होते न दिखाई पड़ी तो डेपुटेशन लेकर भारत लौट आये। आपके आने के पूर्व आपके अनन्य भक्त मि० पोलक भारत आ चुके थे और अफ्रीका के भारतीयों की दारुण दशा सुना रहे थे। यहाँ का लोकमत बहुत जाग चुका था। भारतवासियों ने अपने प्रवासी बन्धुओं के प्रति सहानुभूति दिखलाई और आन्दोलन कर के यह दिखला दिया कि हम तीस करोड़ भारतवासी सब प्रकार से तुम लोगों की सहायता करने के लिए तैयार हैं।

स्वर्गीय महात्मा गोखले ने सन् १९१२ में भारत से कुली विदेश भेजे जाने के नियम के विरोध में बड़े लाट की कौंसिल में एक प्रस्ताव उपस्थित किया। उदार लार्ड हार्डिञ्ज का काल था। बिल पास हो गया।

लेकिन भला, हमारे गोरे कृपालु कब मानने वाले थे। उन्होंने एक बार फिर भारतवासियों को दक्षिण अफ्रीका से बाहर निकाल देने का प्रयत्न आरंभ किया। युनियन सरकार ने पहले कुछ सत्याग्रहियों को निर्वासित किया, किन्तु वे फिर लौट कर वहीं चले गये। इस पर ६४ आदमी बलात्कार भारत भेजे गये। इधर भेजने का और उधर भारत से आने वालों के रोकने का नये दोनों काम जारी थे। भारत से आने

वालों के उतरने में भी अनेक आपत्तियाँ उपस्थित की जाती थीं। इसी उतरने चढ़ने में नारायण स्वामी नामक एक युवक की डेलगोआ की खाड़ी में मृत्यु ही हो गई। उनकी मृत्यु पर बड़ा कुहराम मचा। जिसका फल यह हुआ कि साम्राज्य-सरकार ने ट्रांसवाल सरकार पर बहुत दबाव डाला। भारत-वासियों का निर्वासित होना रुक गया।

सन् १९१० में साम्राज्य सरकार ने युनियन सरकार के पास एक ख़रीता भेजा, जिसमें उसने सन् १९०७ के ऐक्ट तोड़ देने की सिफ़ारिश की और लिखा कि समस्त जातीय-बंधन दूर कर दिये जायँ।

युनियन सरकार ने साम्राज्य सरकार की बात मान ली। झगड़ा कुछ कम हुआ। सन् १९११ ई० में युनियन-इमिग्रेशन बिल प्रकाशित हुआ। यह ऐक्ट भी असन्तोष से खाली न था। फल यह हुआ कि भारतवासियों ने फिर आन्दोलन का आश्रय लिया। उस बिल का पास होना रुक गया। सन् १९१२ में नया क़ानून बना। जिससे केवल यह निश्चित हुआ कि रजिस्ट्री के नियमों का पालन एक वर्ष के लिये रोक दिया जाय। उसी वर्ष भारत में सम्राट् का राज्यतिलक हुआ था। महात्मा गान्धी इस हर्षोत्सव से लाभ उठाना चाहते थे। आपने मि० गोखले को दक्षिण अफ्रीका आकर वहाँ की दशा देखने के लिये आमंत्रित किया। तदनुसार मि० गोखले अफ्रीका गये। वहाँ के भारतीयों ने आपका बड़ा आगत-स्वागत किया, जिसका युनियन-सरकार पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। मि० गोखले ने वहाँ के मंत्रियों से मिल कर और बातचीत कर के इस बात का बचन ले लिया कि तीन-पाउण्ड वाला कर तोड़ दिया जायगा। और पुराने क़ानून में बहुत कुछ

परिवर्तन कर दिया जायगा। लेकिन इसका कुछ कारण यह भी था कि प्रायः एक वर्ष से ही भारत सरकार ने यह निश्चित कर दिया था कि अब भविष्य में भारत से प्रतिज्ञा-बद्ध मज़दूर नहीं भेजे जायंगे। इस प्रकार से मि० गोखले के प्रयत्न से दक्षिण अफ्रीका में कुछ दिनों के लिये शान्ति स्थापित हो गई।

सन् १९१३ में पार्लिमेण्ट में युनियन-सरकार ने एक नया ही बिल उपस्थित किया। जिसके अनुसार यह निश्चित होने को था कि हिन्दू या मुसल्मानी धर्म के अनुसार जो व्याह हो वह नियमानुमोदित और ठीक न माना जाय। इस प्रकार विवाहित स्त्रियाँ रखेली समझी जायँ और उनकी सन्तानें अपनी पैतृक सम्पत्ति पाने की अधिकारिणी न हों *।

युनियन-सरकार के इस प्रस्तावित बिल पर भारतवासी अत्यन्त क्षुब्ध हुए, विलायत डेपुटेशन भेजे और दूसरे अनेक उपाय किये, परन्तु सफलता एक से भी नहीं हुई। युनियन सरकार ने कुछ छोटे मोटे परिवर्त्तन करके वह कानून पासही कर डाला और तीन पाउन्ड वाला कर भी ज्यों का त्यों रहने दिया। विवश होकर भारतवासियों को फिर सत्याग्रह शस्त्र हाथ में लेना पड़ा। उस समय भारतीय पाउण्ड का कर कुल दिया जाय, रजिस्ट्री का नियम रोक दिया जाय, तथा विवाह बिल भंग कर दिया जाय, येही तीन बातें चाहते थे।

आन्दोलन आरंभ हुआ। कहते हैं कि उस समय भारतवासी इतने क्षुब्ध थे और जान पर खेल कर काम कर रहे थे

---

* नेटाल में प्रत्येक ऐसे भारतीय कुली को जिसकी मुद्दत पूरी हो चुकी हो तो भी, प्रतिवर्ष ३ पाउण्ड या ४५) का एक कर देना पड़ता था। यह कर घर के एक ही आदमी से नहीं लिया जाता था, बल्कि घर के प्रत्येक व्यक्ति को स्त्री, पुरुष, बच्चे सब को देना पड़ता था। लेखक।

कि यदि महात्मा गांधी सरीखे नेता वहाँ न होते तो उपद्रव खड़ा होना कोई मुश्किल नहीं था। आप उस समय बराबर दोनों दलों की नाड़ी-परीक्षा किया करते थे-देखा करते थे कि कहीं मुठभेड़ न हो जाय। इसी समय गोरों ने हड़ताल कर दी। उसी अवसर पर आपने भारतीय प्रश्न को कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया था। इसी समय मि० गोखले इंगलैण्ड में थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से भारतीयों का एक डेपुटेशन मंगाया। और उसे लेकर युनियन सरकार के कार्य्यों का घोर प्रतिवाद करना आरम्भ कर दिया। पार्लियामेन्ट को चेतावनी दे दी गई कि यदि भारतवासियों के कष्ट का शीघ्र निवारण न किया जायगा, अन्यायपूर्ण नियमों का समूल विच्छेद न हो जायगा तो हमलोग सत्याग्रह आरम्भ कर देंगे। युनियन सरकार ने भारतवासियों की इस चेतावनी पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सत्याग्रह संग्राम और भी भीषण रूप तथा अधिक मान में आरम्भ हो गया।

अब स्त्रियों के भी जेल-यात्रा करने तथा अपनी देश की मर्यादा-रक्षा के लिए सत्याग्रह करने का सुयोग आया। सैकड़ों स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक जेल जाने लगीं। उनमें अनेक गर्भवती भी थीं। अनेक ऐसी थीं, जिनकी गोद में दुधमुहें बच्चे क्रीड़ा कर रहे थे। स्त्रियाँ कुछ विशेष पठित न थीं। पर हाँ, उनमें स्वाभिमान का ज्ञान पूरा पूरा था। जेल में स्त्रियों को अत्यन्त घृणित से घृणित कष्ट दिये जाते थे। इतने पर भी भारतीय महिलाएँ एक इंच भी अपने नियत कर्त्तव्य पथ से न हटीं, डटी रहीं। यहाँ बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि जिस प्रकार पुरुषों का नेतृत्व महात्मा गांधी करते थे, उसी प्रकार स्त्रियों का नेतृत्व श्रीमती गान्धी (कस्तूरी बाई) करती थीं।

भारतीय वीरांगनाओं का यह वीरोचित चरित्र देख कर गोरे दंग रह गये और दाँतों तले उँगली दबाने लगे।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जिस समय मि०गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे उस समय युनियन सरकार ने तीन पाउण्ड के कर को तोड़ देने का पूर्ण-वचन-दान दिया था। किन्तु स्वार्थ साधकों के पास वचन का मोल ही क्या ! गोखले महोदय के पीठ फेरते ही युनियन सरकार ने पार्लिमेन्ट में एक बिल उपस्थित किया। जिसके अनुसार पुरुषों के लिये तो ३ पाउण्ड वाला कर ज्यों का त्यों बना रहा, पर स्त्रियों की उससे मुक्ति हुई, लेकिन साथ ही स्त्रियों के लिए यह भी आवश्यक हुआ कि वे अपने प्रति एक लाइसेन्स ले लिया करें। यह और भी बुरा हुआ। युनियन-सरकार की इस कुटिल करतूत ने फिर भारतीयों के कान खड़े किये । मि० गोखले इस समय भारत में थे । तुरन्त तार द्वारा उनसे पूछा गया कि क्या स्त्रियों को ही तीन पौण्ड वाले कर से मुक्त करने के लिए वचन मिला था । इसके उत्तर में मि० गोखले ने कहा कि नहीं, सब लोगों को उससे मुक्त करने का वचन मिला था। किन्तु वहाँ न्याय की दीर्घ पुकार सुनता ही कौन। युनि-यन-सरकार पहले की भाँति अपनी बेईमानी पर दृढ़ रही, कहती गई कि कदापि ऐसा वचन नहीं दिया गया था।

युनियन-सरकार की इस नीति से दक्षिण अफ्रीका की समस्त भारतीय जनता में हलचल मच गया । मज़दूरों ने स्थान स्थान पर हड़ताल कर दिये, कारोबार बन्द हो गया, बाज़ारों में उपद्रव और अशांति का मानचित्र टंग गया। महा-त्मा गान्धी ने नेतृत्व हाथ में लिया। सरकार ने दमननीति का आश्रय पकड़ा। धड़ाधड़ लोग जेल में भेजे जाने लगे । जब

सरकार से उपद्रव की मात्रा अधिक अधिक बढ़ने लगी। तो महात्मा गान्धी ने ट्रान्सवाल सरकार को इस बात की सूचना दे दी कि हमलोग अपने आपको गिरफ़ार कराने के लिए नेटाल आ रहे हैं। सरकार ने इस सूचना पर अब भी ध्यान नहीं दिया। अनेक हड़ताली जेल भेजे गये।

उक्त सूचना के एक सप्ताह बाद ६ नवम्बर को महात्मा गान्धी दो हज़ार पुरुषों को साथ लेकर कार्ल्स टाउन से ट्रान्स-वाल की ओर बढ़े। उधर युनियन सरकार ने महात्मा गान्धी को पकड़ने के लिये वारंट जारी कर दिया। वालक्रस्ट पर आप इमिग्रेशन-ऐक्ट भंग करने के अभियोग में पकड़े गये। सारे आन्दोलन का भार आपके सिर पर था, हज़ारों आद-मियों की देख रेख के आप जिम्मेदार थे, इस लिये आपने ज़मानत की दरख़ास्त दी, जो मंजूर होगई। ज़मानत पर छूटते ही महात्मा गांधी तुरंत मोटर पर सवार होकर पार्डीवर्ग में अपने साथियों से जा मिले। सत्याग्रही-सेना पूर्ववत् चली। इसी समय मि० पोलक आप से मिलने आये थे। यहाँ आप गिर-फ़ार कर लिये गये। गिरफ़ार होकर चले जाने के बाद, सेना मि० पोलक के नेतृत्व में आगे बढ़ी। बीच बीच में अनेक कठिनाइयाँ आईं, सत्याग्रहियों ने जिनका बीरता से मुका-बिला किया। इसी समय मि० पोलक भी पकड़ लिये गए। बालफ़ोर में आठ घण्टे बिना अन्न-जल के सत्याग्रही लोग एक स्थान पर बंद रक्खे गये और इसके बाद गाड़ियों पर सवार करा करा के भेजे गये।

गर्ज़ कि उपद्रव और अशान्ति सीमा को पार कर रहे थे। भारतवासियों का कष्ट चरम सीमा पर पहुँच गया था। भारतवासी क्षुब्ध भी अत्यंत हो उठे थे। जिसे देखकर भारत-

सरकार भी अब भयभीत हो गई। तत्कालीन बड़े लाट को परिस्थिति का विचार करते हुए दक्षिण-अफ्रीका जाकर जाँच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त करना आवश्यक हुआ। मि० एंड्रूज़ तथा मि० पियरसन ने भारतवासियों की सहायता के लिए बहुत उद्योग किये। रिपोर्ट तैयार हुई, जिसकी सम्मति भारतवासियों ही के पक्ष में थी। युनियन सरकार को झख मार इस कमीशन की रिपोर्ट की कुल बातें माननी पड़ीं और शीघ्र ही भारत-रक्षा-नियम (Indians Relief Act) पास करके भारतवासियों के अनेक कष्ट भी दूर कर दिये। इस ऐक्ट के पास हो जाने से भारतीय-समाज को सन्तोष हो गया। महात्मा गान्धी ने घोषणा कर दी कि झगड़े का अन्त हो गया।

भारत-आगमन।

अफ्रीका का जीवन सम्पूर्ण करके महात्मा गान्धी स्थायी रूप से भारत आने का विचार करने लगे। इन्हीं दिनों मि० गोखले इंग्लैण्ड में बीमार थे। अतः पहिले आप सपरिवार अपने नैतिक गुरु गोखले को देखने इंग्लैण्ड गये। वहाँ जाकर आपकी तबियत बहुत ख़राब हो गई। इसका बहुत कुछ कारण तो यह था कि आप कि इंग्लैण्ड जैसे देश में जा कर भी नंगे पाँव रहा करते थे! इस पर स्वर्गीय महात्मा गोखले ने इन्हें बहुत कुछ झिड़का भी। मि० गोखले की तबियत संभलते ही आप भारत के लिए रवाना हुए।

भारत पहुँचते ही आपने गुरु गोखले की सम्मति के अनुसार देश-पर्यटन करना आरंभ कर दिया। पहले तीन, चार महीने तक आप भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध स्थानों में भ्रमण

करते और यहाँ के सामाजिक जीवन का उसके अति निकट पहुँच कर निदर्शन और स्वाध्याय करते रहे। इन दिनों आप एक मात्र तीसरे दर्जे की गाड़ी में चलते थे। आपने तीसरे दर्जे में यात्रा करने का मुख्य प्रयोजन बतलाते हुए एक व्याख्यान में कहा था—" मैं भारत के दीन जनों की दशा देखने के हेतु इस तीसरे दर्जे में चलता हूँ।" इसी बीच में आपने अपने रहने के लिए अहमदाबाद नगर पसन्द किया और वहाँ के 'साबरमती' स्थान में सुप्रसिद्ध सत्याग्रहाश्रम स्थापित किया। यह सत्याग्रह आश्रम ऋषियों का आश्रम है, जहाँ से कर्मयोगी तैयार किये जाते हैं, जहाँ जीवन को विशुद्ध बनाने वाले वायु मंडल में रख कर विद्यार्थियों को आदर्श स्वदेश-सेवा की शिक्षा प्रदान की जाती है। आप वहाँ के महर्षि हैं और आपके, प्रिय आश्रम निवासी महर्षि के दीक्षा-ग्रहण करने वाले ब्रह्मचारी बालक।

कुछ दिनों तक महात्मा गान्धी अज्ञातवास में रहते थे। इस प्रकार आप एक वर्ष का समय स्वाध्याय और देश-दर्शन में ही बिता दिये। सन् १९१६ में शर्तबन्दी की मज़दूरी बन्द कराने के लिये जब आपने अविरल परिश्रम किया तब जाकर कहीं नये भारत-रक्षा-क़ानून के अनुसार सरकार ने इसे बन्द कर दिया।

चंपारन में महात्मा गान्धी।

इसी समय दिसम्बर मास में लखनऊ में इंडियन-नेशनल-कांग्रेस का सुप्रसिद्ध अधिवेशन हुआ। कहना नहीं होगा कि यह एक मात्र महात्माजी का ही उद्योग था जिससे भारत की छिन्न भिन्न कांग्रेस में एक बार फिर ऐक्य का संचार

होने वाला था। नरम और गरम दोनों दल देश-सेवा के लिए मिलकर काम करने पर तैयार होने वाले थे। फलतः लखनऊ कांग्रेस में दोनों दलों का भरत-मिलाप हुआ। उस समय बिहार के गोरों के सम्बन्ध में कांग्रेस में एक प्रस्ताव उपस्थित होने वाला था। बिहार के कुछ सज्जनों ने प्रस्ताव पर आपसे बोलने के लिये कहा। इस पर आपने उन लोगों से स्पष्ट कह दिया कि जब तक मैं स्वयं बिहार चलकर वहाँ की स्थिति न जान लूँ तब तक मैं इस विषय में कुछ नहीं बोल सकता। इस पर लोगों ने आपको चंपारन आने के लिए निमंत्रित किया। आप १५ अप्रैल १९१७ को मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचे। वहाँ आपका एक व्याख्यान हुआ। आप दो, चार रोज़ वहाँ ठहर कर चंपारन जाना चाहते थे, पर इसी बीच में आपको समाचार मिल गया कि सरकार मुझे चंपारन जाने से रोकना चाहती है। चंपारन जाना थोड़े समय के लिये स्थगित हो गया। आप वहाँ से मोतीहारी आये। यहाँ आपको ज़िला मैजिस्ट्रेट की एक नोटिस मिली। उसमें कहा गया था कि 'आप से शान्ति-भंग होने की आशंका है। अतः आप शीघ्र अति शीघ्र इस ज़िले को छोड़ कर चले जाँय।' आपने इस नोटिस की अवज्ञा करना ठीक समझा। अतः आप १८ अप्रैल को डिप्टी मैजिस्ट्रेट की अदालत में पहुँचे और कहा कि मैंने आज्ञा की अवज्ञा इस लिए नहीं की है कि मुझमें सरकार या अधिकारियों के प्रति आदर नहीं है, बल्कि अपने विवेक तथा अपने जीवन के उच्चतर नियम के आज्ञापालन के लिए की है।

बात न बढ़ी। सरकारी आज्ञा से आप पर तामील की हुई नोटिस वापस कर ली गई और आपको सब स्थानों पर घूम २ कर जाँच करने की स्वतंत्रता मिल गई।

स्वतंत्रता मिलते ही महात्मा गान्धी गाँव गाँव, देहात, देहात, घर २ जाने लगे और नील के गोरे साहबों के अत्याचारों की जाँच पड़ताल करने लगे । एक महीने तक अविश्रान्त जाँच करके आपने ७००० से अधिक आदमियों के बयान लिए और इस सम्बन्ध की एक रिपोर्ट तैयार कर के सरकार के पास भेजी, सरकार बड़े असमंजस में पड़ी। अंत में विवश होकर उसने चंपारन की बातों की जाँच करने के लिये छः सज्जनों की एक कमिटी नियुक्त की और उसमें प्रजा की ओर से महात्मा गान्धी को रक्खा ।

कमेटी के सामने हिन्दुस्तानी और अंगरेज, काले, गोरे, सभों की गवाहियाँ हुईं । अंत में कमीशन ने तीन मुख्य उपाय बतलाए थे, एक तो यह कि तिनकठिया प्रणाली उठा दी जाय, और नील की खेती करना या न करना किसान की इच्छा पर छोड़ दिया जाय और लोगों के साथ पहले ही नील बोने के सम्बन्ध में जो लिखा पढ़ी हो चुकी है वह रद्द कर दी जाय, और उसके बदले में नई लिखा पढ़ी की जाय । दूसरे यह कि कोर्ट-आफ़-वार्ड्स के अधिकार में जो ज़मीन है वह लोगों को काश्त के लिए दी जाय और उनसे किश्तों में लगान वसूल हो, और उनसे 'अबवाब' आदि अनुचित कर न लिये जाँय। तीसरे यह कि वर्तमान प्रणाली में जो फुटकर दोष है वे भी दूर कर दिये जाँय। सरकार के इन निश्चयों का देशी भाषा में अनुवाद करके लोगों में बाँट दिया गया था ।

इसके उपरान्त सरकार ने इस बात की भी इच्छा प्रकट की थी कि महात्मा गान्धी और छः महीने तक बिहार में रहकर नील वाले साहबों और रियाया का परस्पर

विरोध दूर कर दें। आप छः मास तक वहाँ रहे, अनेक पाठ-शालाएँ खोलीं, उनके कल्याण के सभी साधन सुलभ किये। वहां की रियाया के सभी दुःख दूर हुए। आपको वहां के लोग देवता मानने लगे। अब भी चंपारन की जनता आपको ईश्वर तुल्य मानती है।

हाल की बातें।

चंपारन के मामले के ख़तम होते ही गान्धी जी सुधार-स्कीम के सम्बन्ध में काम करने लगे। आपने अपने आन्दोलन द्वारा यह दिखला दिया कि स्वराज्यान्दोलन केवल कुछ इने गिने नेताओं का ही आन्दोलन नहीं है बल्कि बहुत से भारतवासी भी उसमें सम्मिलित हैं।

इसके बाद सन् १९१८ में अहमदाबाद की मिलों के मज़दूरों और मालिकों में वेतन के सम्बन्ध में कुछ झगड़ा हो गया था। मज़दूरों के अधिकारों की रक्षा के लिये महात्मा गान्धी ने उन्हीं का पक्ष लिया और अंत में आपने यहाँ तक प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मज़दूरों की शिकायतें दूर न होंगी और उनका वेतन न बढ़ेगा तब तक मैं अन्न, जल ग्रहण न करूंगा। अंत में मालिकों को मज़दूरों का वेतन बढ़ाना पड़ा और तब प्रायः एक सप्ताह के उपवास के उपरान्त आपने अन्न, जल ग्रहण किया।

खेड़े ज़िले की अकाल पीड़ित प्रजा सरकारी लगान देने में बिल्कुल असमर्थ थी, लेकिन सरकारी कर्मचारी किसी तरह मानते न थे। जिस तरह होता, चाहे माल असबाब कुर्क करने से, चाहे ज़मीन जायदाद बेचने से लगान वसूल करते। दीनबन्धु महात्मा गान्धी वहाँ पहुँचे। और खेड़े की जनता

के दुःख दूर करने में अथक श्रम से लग गये। इस श्रम का यह फल हुआ कि महात्मा जी की जीत हुई और खेड़े की जनता का कष्ट निवारण हुआ।

खेड़े का कार्य्य आपके प्रसिद्ध कार्य्यों में एक गिना जाता है। यही पहिला अवसर था जहाँ आपने अफ्रीका में प्रयोग किये सफल सत्याग्रह शस्त्र को काम में लाया था।

इसके उपरान्त आप हिन्दी के प्रचार आदि का काम करते रहे हैं।

महात्मा गांधी और असहयोग।

ठीक कहा है जब बिगड़ने की घड़ी आती है तो बुद्धि बिचारी भी जवाब दे बैठती है। यही ठीक दशा आज हमारी नौकरशाही की हो रही है। अंगरेज़ जाति के कूटनीतिज्ञों से कभी भी यह आशा नहीं की जाती थी कि वे भूलकर भी ऐसी राजनैतिक भूल करेंगे जैसी कि उन्होंने इस वर्तमान समय में की है। कौन नहीं जानता कि जब से गोरी सरकार ने हिन्दुस्तान के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली है तब से उसकी यही पालिसी रही है कि कभी हिन्दुओं को मिलाकर मुसल्मानों को धर दबोचें, तो कभी मुसल्मानों की पीठ पर हाथ रखकर बेचारे हिन्दुओं पर हाथ साफ़ करें। ये दो क़ौमें भी काफ़ी भोली या यों कहिए कि घनचक्कर थीं जो सदा आपस में कट मरने पर तुली रहती थीं और इस तरह सरकार की इस (Divide and rule) नीति के अनुसार मत-भेद उत्पन्न करके सुख-पूर्वक राज्य करने की नीति की जड़ में पानी दिया करती थीं। सुयोग अच्छा से अच्छा उपलब्ध होता रहा, सरकार उससे सदा लाभ उठाती रही।

किन्तु विधाता की अकृपा हुई । अंगरेज जाति की नीयत ख़राब हुई । उससे एक दम बड़ी भारी राजनैतिक ग़लती हो गई । वह क्या, वह ग़लती यही कि उसने हिन्दू और मुसल्मान दोनों को क्षुब्ध बना दिया, जो राजनीति की दृष्टि से उसके हक़ में कभी ठीक काम नहीं हुआ ।

पंजाब का हत्याकाण्ड हुआ--उद्दण्ड नौकरशाही ने निहत्थे भारतवासियों पर सितम के तेग़ चलाए, सरकार चुपचाप देखती रही । इतना ही नहीं, सरकार ने हत्याकाण्ड के सूत्रधार ओडायर की पीठ भी ठोंकी, शाबाशी दी। देश ने अपना क्षोभ प्रकट किया । नेताओं ने सरकार से ब्रिटिशन्याय-परता का परिचय देने और पंजाब-हत्याकाण्ड की जांज पड़ताल कर यथावत् न्याय करने की याचना की, किन्तु अपने हाथ पाँव को अपने ही हाथ भला कौन काट सकता है ? जिस नौकरशाही की बदौलत सरकार, सरकार बनी हुई है, उसी पर वह अपनी तीव्र-दृष्टि कब घुमा सकती है । यही हुआ, सरकार ने न्याय को दबा दिया, हत्याकाण्ड के बारे में अपनी कुछ आयँ बायँ सम्मति प्रकाशित कर दी । किन्तु कहीं कुछ न हुआ । हुआ तो उलटे और यह कि हत्याकाण्ड के मूल कारण ओडायर को दाद दी गई, वह अपनी हिंसा-वृत्ति के लिये पुरस्कृत हुआ । क्यों न हो Indian must be bled. भारत का खून चूस लेना चाहिए, जिनकी ऐसी नीयत और जिनके ऐसे विचार हैं, उनके सामने एक क्या पंजाब हत्याकांड के समान दस हत्याकाण्ड कोई विशेष ध्यान देने योग्य बात नहीं है । आख़िर तो भारतीयों का ही न खून था ?

ख़ैर, सरकार की न्याय-परीक्षा देखी गई, नेताओं का भी दिली हौसला रह गया, जब कुछ न हुआ और न होते

देखा तो हिन्दू जनता व्याकुल हो उठी, समस्त ओर से क्षुब्ध हो गई। उसने निश्चय किया कि फिर तो जान पर खेल कर हम अपने मान को, जो जान से कहीं प्यारा है रक्षा करेंगे।

इधर बेचारे मुसल्मानों के दिलों पर भी ग़ैब और ग़ैरत की बिजली गिरी। अंगरेजी राजनीति पंडितों ने अपनी प्रतिज्ञाओं पर पानी फेरा, मुसल्मानों के ज़ेर ख़लीफा तुर्की के बादशाह का बेक़ाबू और बेकस बनाना चाहा, मुसल्मानों के पाक मुक़ामात के हथियाने की बदनीयती ज़ाहिर की—इससे मुसल्मान बिगड़ खड़े हुए, उनके दिलों को कड़ी चोट लगी। ख़िलाफ़त ने जोर पकड़ा।

उधर पंजाब के हत्याकाण्ड से क्षुब्ध हिन्दू और इधर ख़िलाफ़त के मामले से तंग आये मुसल्मान, दोनों का दैव संयोग से संघात क्या हुआ, मानों गंगा और जमुना दोनों का पवित्र संगम हुआ।

फलतः सरकार के अन्यायों के प्रतिकार की युक्तियाँ सोची जाने लगीं। देश के नेता विचार सागर की तलैटी में पहुँचे, विचारमग्न हुए। समस्या विकट थी। जब किसी से कुछ सोचते न बना तो महात्मा गांधी के परिष्कृत मस्तिष्क से एक अद्भुत युक्ति निकली और उसी का नाम असहयोग प्रसिद्ध हुआ।

भारत की परिस्थिति को प्रत्येक दृष्टि-कोण से देखकर महात्मा गांधी ने कहा, इस समय हमारे लिए यही एक युक्ति है। जैसा कि एक उर्दू शायर ने कहा है—

तक़ाज़ाय ग़ैरत यही है अज़ीज़ो।
कि हम भी रहें तुमसे बेज़ार होकर॥

कि हम लोग ऐसी सरकार से जो हमारे मनुष्यत्व के जन्म-सिद्ध अधिकारों का इस प्रकार खून करती है, जो हमारे साथ

न्याय की आँख फोड़ कर काम करती है उससे सब प्रकार से सहयोग त्याग दें। आपने बतलाया कि इस शान्ति प्रिय असहयोग से सरकार रूपी मशीन के पुर्जे पुर्जे ढीले पड़ जायँगे, उसको अपनी नानी याद आ जायेगी।

आपने अपने इस असहयोग-अस्त्र की गूढ़ क्रिया मुसल्माननेता सम्मानित अलीबंधुओं से बतलाई। अली भाइयों ने बहुत पसंद किया। अब क्या, अब जहाँ दो की राय हुई कि देश के सम्मुख इस प्रस्ताव के लाने की आवश्यकता हुई। कुछ लोगों ने असहयोग-संग्राम की रणभेरी फूँकने के पहिले अपने सैनिक देश-बंधुओं को साथ कर लेना ठीक समझा। प्रस्ताव पर विचार करने के लिए कलकत्ते की कांग्रेस हुई। कांग्रेस में यद्यपि प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ, किन्तु अधिकतर नेता ऐसे थे जो प्रस्ताव से विरोध रखते थे, या उसमें विशेष परिवर्तन चाहते थे। फलतः नागपुर कांग्रेस हुई। संयोग से प्रस्ताव यहाँ बहुमत से स्वीकृत हो गया। दो एक, जैसे मालवीयजी, खापर्डे महोदय आदि को छोड़ कर और सब देश के नेता साथ हुए। असहयोग-संग्राम के सेना-नायक प्रातःस्मरणीय महात्मा गान्धी ने रण-शंख फूँका। सैनिक, सत्य और धर्म रूपी हथियार ले सेना में भर्ती होने लगे। पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय, देशभक्त पं० मोतीलाल नेहरू, त्यागी चित्तरंजन दास तथा भीम अली भाइयों ने पीछे पीछे मार्च किया। सेना दलबल लिये चल पड़ी।

सेना ने पहले कौंसिलों के किले तोड़े, फिर कालेजों और स्कूलों पर धावा मारे और अंत में वकीलों की कचहरियों पर दख़ल किया।

इससे खंडनात्मक कार्य्य का समारंभ समाप्त हुआ। मंडनात्मक कार्य का श्रीगणेश हुआ। गांधीजी महाराज की दुंदुभी बजी कि यदि स्वराज्य लेना है तो फिर तिलक स्वराज्य फंड स्थापित करो—उसमें एक करोड़ जुलाई के अंत तक धन जमा करो, एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बर बनाओ और ५० लाख देश में चर्खा चलाओ। घोषणा हुई, देश के भिन्न भिन्न त्यागी नेताओं ने घोषणा में वर्णित विषयों को पूरा करने और इस प्रकार स्वराज्य के यज्ञ की पूर्ति में लगगये। पंजाबकेसरी लालाजी ने पंजाब में सिंह-नाद किया, त्यागी चित्तरंजन उधर बंगाल में गुर्राये, माननीय मोतीलाल इधर संयुक्तप्रान्त में गरज उठे, अली भाइयों ने अपने भीमकाय से दुश्मनों के छक्के छुड़ाये, गांधीजी नाके नाके पकड़ कर बैठ गये, और देश के अन्यान्य नौनिहाल असहयोग सेना के सिपाहियों ने ज़ोर मारा, पहिली अगस्त के पहले पहले एक लाख से कहीं अधिक रुपये भी मिल गये, २० लाख से अधिक चरखे भी चल गये। एक करोड़ से अधिक कांग्रेसमैन भी होगये—प्रथम यज्ञ सकुशल समाप्त हुआ।

कहना नहीं होगा कि यज्ञ में अनेक देश के लाल बलिदान हुए, जो कि बहुत ही स्वाभाविक था। किसी ने कहा भी है बिना बलिदान के किसी भी यज्ञ की पूर्ति नहीं होती और यह तो राष्ट्रीय-यज्ञ ठहरा, इसमें तो बलिदानों की और बहुतायत से आवश्यकता पड़ती है।

सरकार ने दमन का आश्रय लिया और उससे असहयोग की आग का शमन करना चाहा, किन्तु परिणाम बिल्कुल उलटा हुआ। आग और बढ़ती चली।

तिलक स्वराज्य-फंड का काम समाप्त हुआ कि गांधी जी की दूसरी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। गान्धी जी ने विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार की घोषणा कर दी। यहीं तक नहीं, आपने इस वहिष्कार की एक नियत तिथि भी स्थित कर दी। पहले वह तिथि थी अन्तिम सितम्बर। किन्तु जब आपने उक्त तिथि तक सम्पूर्ण वहिष्कार होते न देखा तो तिथि बढ़ा दी। फलतः वहिष्कार की तिथि अक्तूबर निश्चित हुई। गत अक्तूबर मास में आप इस कार्य्य के लिए देश के प्रधान प्रधान नगरों में चक्कर भी लगाए। जिसका फल यह हुआ कि संख्यातीत रुपयों के विदेशी-वस्त्रों की होली जलाई गई, अनेक मारवाड़ी व्यापारियों ने विदेशी वस्त्रों के व्यापार की शपथ ली, स्थान स्थान धरना का कार्य्य आरंभ हुआ, स्वदेशी-आन्दोलन एक पर्याप्त बल पकड़ गया, चरखे और करघे के तैयार कपड़े क़ाफी तायदाद में लोगों के शरीर पर देखे जाने लगे। गर्ज़ कि स्व-देशी से स्वराज्य प्राप्ति की प्रक्रिया हल की जाने लगी। महा-त्माजी ने देश को साफ़ शब्दोंमें सुना दिया कि अगर देश ने स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया तो हमारे ध्येयकी पूर्ति में किसी प्रकार की अड़चन उपस्थित नहीं हो सकती। अब देश ने महात्मा जी के बचनों का कितने अंश तक पालन किया, वह प्रत्यक्ष है। मैंने यह माना कि महात्मा जी के स्वदेशी आन्दोलन ने १६०५ के स्वदेशी आन्दोलन से लाख गुना काम किया है। मैंने यह भी माना कि चरखे और करघे का खूब प्रचार भी हो गया है किन्तु मैं कदापि यह मानने को तैयार नहीं कि देश ने जैसा कि महात्मा जी कहते हैं विदेशी वस्त्रों का सम्पूर्ण वहिष्कार कर दिया है। अभी भी देश में ऐसे लोग कम नहीं हैं जो विदेशी जोड़े जामे में न नज़र आते हों।

यह सवाल हल हो ही रहा था कि देश ने पुरुष सिंह अली-बंधुओं की गिरफ़ारी का समाचार पढ़ा। अलीबंधुओं की गिरफ़ारी अक्तूबर मास में हुई। गिरफ़ारी ने देश में कैसी सनसनी पैदा कर दी और वह कैसी सनसनी पैदा कर देती यदि देश को शांति का संदेश सुनाने वाली महात्मा जैसी आत्मा न होती। मुसलमान-संसार खड़ा खड़ा नौकरशाही की यह करतूत शांतिमय देखता रहता, यह कदापि सम्भव न था। स्वामी शंकराचार्य भी साथ साथ पकड़े गए थे। हिन्दू चुप रह जाते तो रह जाते, यद्यपि आशा नहीं, लेकिन हमेशा की आनदार मुसल्मान जाति चुप रह जाती, यह कभी मुमकिन नहीं था। लेकिन क्या हुआ ! लोगों ने स्मशान शान्ति से अपने प्यारे देश-बंधुओं को देश की पवित्र बलि-वेदी पर चढ़ते देखा। इसका एक कारण है महात्मा जी की शांति-शिक्षा। नहीं तो मशीनगन से डराने से थोड़े लोग चुप बैठे रह जाते।

अक्तूबर का महीना स्वदेशी-आन्दोलन में बीता। नवम्बर महीना आया। यों तो महात्माजी ने सैनिकों के नाम घोषणा-पत्र निकाल ही दिया है। जिसका तात्पर्य यह है कि सरकारी नौकरी और विशेष कर सेना में भर्ती हुए नौकरों को-क्योंकि मानव जाति के नौनिहालों के पैरों में गुलामी की ज़ञ्जीर डालने का अगर एक मात्र साधन कोई है तो येही हैं—चाहिए कि जहाँ तक जल्दी हो नौकरी छोड़ दें, आकर देश का काम करें और स्वराज्य के सुप्रभात को देखने के लिए उत्सुक बने रहें। फिर भी जैसा कि आपने अपने कई भाषणों में कहा है कि अगर स्वदेशी-आन्दोलन का प्रश्न जैसा कि मैं चाहता हूं अक्तूबर में हल हो गया तो नवम्बर मास से विशेष रूप से मैं सैनिकों के नाम संदेश भेजूंगा, और जिस

तरह भी बनेगा उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे इस राक्षसी राज्य की गुलामी छोड़ कर देशकी रक्षाका कार्य्य हाथ में लें।

आखिर ४ नवम्बर को दिल्ली की कमेटी में महात्मा जीने सत्याग्रह की भी घोषणा करदी। इसके साथ ही साथ युवराज भारत आ रहे हैं, इस कांग्रेस की बैठक ने उनके स्वागत का वहिष्कार भी कर दिया।

इसके बाद दिसम्बर है। देश आशा भरी आँखों से दिसम्बर की उस शुभ तिथि की ओर देख रहा है जिस समय भारत के भाग्य-गगन में स्वराज्य-सुप्रभात की सुनहरी किरणें छिटकेंगी और लोग राष्ट्रीय-गीत की सुन्दर स्वर लहरियों में स्वतंत्र होने की खुशी मनायेंगे। महात्मा जी के कथनानुसार दिसम्बर भारतीय-स्वतंत्रता का अंतिम समय होगा, इसी दिसम्बर को स्वराज्य की घोषणा होगी। दिसंबर में अहमदाबाद में कांग्रेस होने वाली है,अतः असम्भव नहीं कि जो महात्मा जी वहीं पर प्रजासत्तात्मक राज्य (Republic government) की घोषणा करें।

महात्मा जी के पवित्र उद्देश्यों में जनता का विश्वास है, इन्हीं के हाथों देश की गुलामी की जञ्जीर टूटेगी, यह भी बहुत से लोग मानते हैं। किन्तु क्या होगा, इसे ईश्वर जाने। इसका ज्ञान मानवी-बुद्धि क्षेत्र के बाहर है।

अन्त में एकतीस करोड़ भारतसंतान की एक कंठ से ईश्वर से यही प्रार्थना है कि महात्मा गांधी, त्यागी गांधी, कर्मवीर गांधी, धर्मप्राण और भारत-भाग्य गांधी सदा चिरायु हों तथा ईश्वर उन्हें इतना बल दे कि वे वृद्धा भारत माता के पैरों से पराधीनता की विकट बेड़ी काट, उसे बंधन विमुक्त कर सकें।

दिव्य--वाणी ।

भारत आत्म-बल से सब कुछ जीत सकता है। आत्मा
ी शक्ति के आगे शरीर की शक्ति तृणवत् है।

जो अहिंसा धर्म का पूरा २ पालन करता है। उसके
रणों पर सारा संसार आ गिरता है।

जहाँ सत्य और धर्म है वहीं विजय भी है। सत्याग्रह विशुद्ध
ात्मिक शक्ति है, आत्मा सत्य का स्वरूप है। इसी लिए इस
क्ति को सत्याग्रह कहते हैं। आत्मा ज्ञान-मय है। उसमें
ेम-भाव प्रज्वलित होता है। अज्ञान से यदि हमें कोई कष्ट
ोगा तो हम उसे प्रेम-भाव से जीत लेंगे।

सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है जिसके सब तरफ़ धार है,
सका उपयोग हर तरह से हो सकता है।

भारतीय सभ्यता की प्रवृत्ति नीति दृढ़ करने की ओर है।
ाश्चात्य सभ्यता का झुकाव अनीति दृढ़ करने की ओर है।

भारतीयों को मशीन का बना कपड़ा न पहनना चाहिये।

भारत का कल्याण इसी में है कि गत पचास वर्षों में
सने जो कुछ सीखा है वह भूल जाय।

यदि हम लोगों में मातृ-भाषा के प्रति आदर न होगा
ो हमारा राष्ट्र कभी स्वराज्य-भोगी नहीं होगा।

पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय ।

जन्म और शैशव ।

प्रसिद्ध वाग्मी, दृढ़ देशभक्त पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय का जन्म सन् १८६५ ई० में लुधियाना ज़िले के एक छोटे से गाँव जागराँव में हुआ था ।

आपके पूज्य पिता लाला राधाकृष्ण जी थोड़े दिनों सरकारी स्कूल के उर्दू अध्यापक थे । सन् १८७७ ई० में स्वामी दयानंद सरस्वती की अनन्य भक्ति उनके हृदय-धाम में समाई । कांग्रेस से भी आपका घनिष्ट सम्बन्ध था । आपका प्रचुर-पाण्डित्य तथा विचार-विस्तार सब को ज्ञात था ।

आपकी स्नेहमयी जननी भी समान योग्य थीं । लाला जी में मितव्ययिता, सादगी आदि जो अलौकिक गुण विद्यमान हैं उन सब का श्रेय आपकी माता को ही है । योग्य पिता और ममतामयी योग्या माता की गोद में लाला जी ने अपना शैशव समाप्त किया ।

शिक्षा ।

आपके पिता सरकारी स्कूल के अध्यापक थे । ऐसी दशा में स्वभावतः आपकी शिक्षा का उपक्रम वहीं से होना था । वही हुआ भी । आपने उसी सरकारी स्कूल में शिक्षा आरंभ की और वहीं से इंट्रेंस की परीक्षा भी दी । इंट्रेंस के

बाद, आप लाहौर के गवर्नमेन्ट कालेज में प्रविष्ट हुए। यहाँ दो साल तक आपको युनिवर्सिटी की ओर से छात्रवृत्ति भी मिलती रही। [सन् १८८३ में आपने कानून की प्रथम परीक्षा पास की और दो बरस बाद डिग्री भी हासिल की। निदान हिसार आपकी वकालत का क्षेत्र बना। आप हिसार में रह कर वकालत करने लगे।

ऐंग्लोवैदिक कालेज की स्थापना।

इन दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती का ज्ञान-प्रभाकर भारतीय--गगन मंडल में दीप्तमान हो रहा था। मतवादियों के घर में खलबली मची हुई थी। धार्मिक--संसार में तूफ़ान आया हुआ था। एक नई जागृति पैदा हो गई थी। एक नवीन भाव निर्माण अपना उपक्रम करने लग गया था। स्थान २ जगह जगह लोग इस नये मत को अपना रहे थे।

यों तो समस्त भारत इस नवीन धार्मिक जागृति से प्रभान्वित हो रहा था, किन्तु पंजाब में इसका विशेष ज़ोर था। स्वर्गीय पण्डित गुरुदत्त जी एम० ए०, देशभक्त लाला हंसराज जी तथा हमारे प्रस्तुत चरित्रनायक पंजाब में ये ही तीन युवक ऐसे थे, जिनके हृदयों में उस नवीन जागृति का सूर्य पहिले पहल उदय हुआ। कहना नहीं होगा कि इन तीन युवकों ने ही पंजाब के वायु मंडल में एक अद्भुत उथल पुथल पैदा कर दी थी। उस समय आर्यसमाज का जितना भी ज़ोर पंजाब में था, उसके कारण ये ही तीन नौजवान माई के लाल थे।

गर्ज़ कि इन ही युवकों के अविरल उद्योग और सराहनीय श्रम के कारण थोड़े ही दिनों में आर्यसमाज़ ने पंजाब में

बहुत अच्छा ज़ोर पकड़ लिया। फलतः लोगों के हृदयों में इस विचार-वीज का वपन होने लगा कि एक वैदिक कालेज खोलना चाहिये। उपरोक्त तीन वीरों ने इस शुभ-संकल्प को हाथ में लिया। फलतः सन् १८८६ ई० में एंग्लोवैदिक कालेज लाहौर की नींव रक्खी गई। पहिले तो कालेज कुछ थोड़े से बालकों से आरंभ हुआ था, क्योंकि आर्य्य--सामाजिक संस्था में अपने बालकों को भेजने में भी लोग पहिले हिचकते थे, किन्तु धीरे २ कालेज एक बहुत बड़े कालेज में बदल गया। आज एंग्लो वैदिक कालेज पंजाब की एक सबसे बड़ी संस्था है।

इन्हीं दिनों सन् १८९२ ई० में लालाजी अपना हिसार का स्थान बदल कर लाहौर चले आये। और वहीं से आर्य समाज के प्रचार कार्य्य की देखभाल तथा वकालत का काम दोनों ही कार्य्यों पर दृष्टि फेंकते रहना ठीक समझा। आपके लाहौर चले आने से लाला हंसराज जी को बड़ा योग मिला। दोनों महापुरुषों के योग का यह फल हुआ कि थोड़े ही दिनों में लाहौर के आस-पास अनेक उपकारी संस्थाएँ देखी जाने लगीं।

राजनैतिक क्षेत्र में प्रथम पदार्पण।

पच्चीस साल तक आर्यसमाज के परिमित वृत्त के अन्दर रहकर काम करने के बाद लालाजी का विचार-क्षेत्र विस्तृत हो चला। पहिले जो केवल आर्य-समाज ही उनकी सेवा का केन्द्र था वह भाव हृदय से जाता तो न रहा लेकिन इतना अवश्य हुआ कि समस्त भारत अब आपकी सेवाओं का आश्रय-स्थान बन गया। देश की ओर आपकी दृष्टि फिरी, भारत माता ने आपको आह्वान किया, जननी को आपकी सेवाएं अपेक्षित हुईं।

तात्पर्य यह कि सन् १८८८ ई० के लगभग आपने देश-सेवा के मैदान में अपना पैर आगे बढ़ाया।

राजनैतिक क्षेत्र में आने के साथ ही आपने तत्कालीन राजनीतिविशारद सर सैयद अहमदखाँ के ऊपर एक आलोचनात्मक टिप्पणी जमाई। सर सैयदखाँ के विचारों और उनकी पुस्तकों का खूब अध्ययन करके आपने उनके ऊपर अपने निर्भीक विचार प्रकट किये। कहना नहीं होगा कि आपकी लेखन-शैली को देखकर स्वयं सर सैयदखाँ ने भी मुक्त कण्ठ से आपकी प्रशंसा की थी। रही विचारों की बात, उसके विषय में दो मत थे। कुछ लोगों का अभी तक ख़्याल है कि लाला जी सोलहो आना ठीक थे और कुछ कहते हैं कि सोलहो आना ग़ल्ती पर थे। लेकिन सच तो यों है कि आपके विचार यद्यपि बहुत स्थानों पर बहुत ही अच्छे और प्रशंसनीय थे, यद्यपि आप इतनी छोटी उम्र में ही राज-नीति की तह में पहुँच चुके थे, फिर भी आप उस ऊँचाई से अभी बहुत दूर थे, जिस ऊँचाई तक सरसैयद की पहुँच हो चुकी थी। लालाजी ने इस बात को स्वतः स्वीकार किया है कि सर सैयदखाँ की पुस्तकों से मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला।

इटली के देशभक्तों की जीवनियाँ और लाला जी।

गुणग्राही लोगों का काम गुणों का ग्रहण करना चाहे जहाँ से हो संग्रह करना मात्र है। लालाजी में इस गुण का बहुत बचपन से ही प्राचुर्य्य रहा है। छोटेपन से ही आप इस गुण के लिये बड़े आतुर देखे गये हैं। इसी व्यापक-विचार-वैचित्र्य का परिणाम यह हुआ कि आपने इटली राष्ट्र के महापुरुषों

की जीवनियों का स्वाध्याय करना आरंभ किया। यों तो आप-ने देशभक्तों की अनेक जीवनियाँ उलट डालीं किन्तु उनमें से मेज़िनी और गैरीबाल्डी ये दो देशभक्त आपके स्वाध्याय के प्रधान पात्र रहे हैं। आपने उर्दू भाषा में इन सज्जनों की जीवनियाँ उसी समय लिखी थीं जो आज तक भी साहित्य मंजूषा के उज्ज्वल रत्न हैं।

इसी समय आपने महात्मा कृष्ण तथा अपने धर्म-गुरु स्वामी दयानंद सरस्वती के जीवन चरित्र भी लिखे। आज भी जिनका समुचित मोल लगता है।

अकालपीड़ितों की सहायता।

लाहौर आने पर जो सबसे पहले और प्रशंसनीय कार्य्य आपने किया, वह यह था कि सन् १८९७ ई० के अकाल के समय आपने आर्य-समाज की ओर से एक अनाथरक्षा-समिति को जन्म दिया। इसी प्रकार सन् १८९९—१९०० ई० के भीषण अकाल के समय भी आपका भाग अत्यन्त प्रशंसा-पात्र रहा। आप फ़ीरोज़पुर अनाथालय के बहुत दिनों तक सभासद थे। मेरट वैश्य अनाथालय में भी आपका प्रधान हाथ था। गर्ज़ कि भारत के जिस कोने से अकाल--पीड़ितों की क्रंदन-ध्वनि सुन पड़ती थी, उसी ओर आपकी उदार दया दौड़ी हुई चली जाती थी। सरकारी अकाल-रक्षा नीति की बड़ी २ भूलों को आपने सर्व साधारण के सामने रक्खा, तथा ईसाइयों के हाथ अकाल-पीड़ित हिन्दू बच्चों के जाने और दिये जाने के विरुद्ध आपने ज़ोर की आवाज़ उठाई। ईसाइयों के पंजे से दीन हिन्दू बच्चों का छुटकारा, उसका परिणाम हुआ। सरकारी नीति में परिवर्त्तन हुआ। अब तक जो अकाल के

लावारिस यतीम बच्चों को ईसाइयों के हाथ बिना सोचे समझे दे डालने की आदत थी, सरकार ने उसे छोड़ कर एक पर्याप्त सुन्दर मार्ग का अनुसरण किया। अच्छी तरह पता लगाकर यदि बच्चा हिन्दू का है तो हिन्दू को और मुसल्मान का है तो मुसल्मान को दिलवाने की प्रणाली आरंभ हुई। कहना नहीं होगा कि यह लालाजी ही का प्रभाव था जो सरकारी नीति ने इतना पलटा खाया। जिससे हिन्दुओं के बच्चों का धर्म जाते २ रह गया।

इंगलैंड-प्रवास ।

अकाल के दिनों में आपने इतना सपरिश्रम काम किया था कि जिससे आपका स्वास्थ्य बहुत ही विकृत हो रहा था। इसी बीच में १९०५ में काँगरा में भूकम्प आया। जिससे लाखों आदमी उसके शिकार हुए। यद्यपि उस समय लाला जी का स्वास्थ्य उन्हें सामाजिक संकटों में हाथ बटाने की आज्ञा न देता था तथापि उनकी उदार और कोमल चित्त-वृत्तियाँ उन्हें तटस्थ न रख सकीं। सब कुछ होते हुए काँगरा के भू-कम्प के समय आपने बड़ी मुस्तैदी और तत्परता के साथ काम किया। परिणाम यह हुआ कि तन्दुरुस्ती बिल्कुल बिगड़ गई।

इन्हीं दिनों भारत की नौकरशाही की धींगाधींगी का कच्चा चिट्ठा इंगलैण्डेश्वर के कानों तक पहुँचाने की सरगर्म चर्चा हो रही थी। देश के सामने यह विचार उपस्थित था कि इस नौकरशाही की काली करतूत को पहले वहाँ की प्रजा और फिर राजा को सुना देना चाहिये। प्रजा, प्रजा एक हैं। शायद इंगलैण्ड की प्रजा भारतीय प्रजा-वर्ग के साथ सहानु-

भूति दिखलाये, इनके लिये कुछ उद्योग करे, कुछ पार्लिमेण्ट में लड़ झगड़ कर नौकरशाही की कतर बौंत पर कड़ी २ सुनावे। इसी विचार ने स्वर्गीय मि० गोखले तथा लाला लाजपत राय इन दो सज्जनों के ऊपर इस दायित्व-पूर्ण राजनैतिक संदेश को इंगलैण्डेश्वर तक पहुँचाने का भार सौंपा। फलतः उपरोक्त दोनों सज्जन इंगलैण्ड के लिये रवाना हुए। इंगलैण्ड जाने पर आपके अनेक स्थानों पर अनेक व्याख्यान हुए। आपने वहाँ के श्रमजीवी दल, प्रजातंत्र-वादी दल तथा साम्यवादीदल इन तीन प्रधान दल के पक्षों के सम्मुख अपने महत्व-पूर्ण प्रश्न को रक्खा। लोगों ने आपकी कथन-शैली तथा संदेश-सार दोनों को खूब सराहा। तदनन्तर आप शिक्षा-सम्बन्धी अनुभव लाभ के लिये इंगलैण्ड से अमेरिका चले गये। वहाँ आपने कोई एक वर्ष का समय व्यतीत किया। अमेरिका से आप फिर इंगलैण्ड आये और मि० गोखले के साथ साथ राजनैतिक प्रचार-कार्य धड़ल्ले के साथ करते रहे।

स्वदेशी-प्रचार में लालाजी का भाग।

जिस समय आप भारत से इंगलैण्ड के लिये रवाना हुए थे उस समय आपकी दशा तथा अमेरिका आदि स्वतंत्र देशों का परिभ्रमण कर स्वदेश लौटने के पश्चात् की आपकी दशा में एक भयानक परिवर्त्तन उपस्थित हो गया था। विलायत तथा अमेरिका के प्रवास ने आपकी सुषुप्त आँखें खोल दीं। स्वतंत्रता और आत्म मुक्ति के लिये अपने को बलि चढ़ाने वाली जातियों की जागृत अवस्था ने आप में एक स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। जब आपने देखा कि योरप तथा अमेरिका

देश अपने राजनैतिक अधिकारों के लिये, अपने को मुद्रण-सम्बन्धी बंधनों से मुक्त करने के लिये, इतनाही नहीं अपने को अप्रतिबंध राजनैतिक पिशाचों के उपद्रव से पृथक होने के लिये बेतरह लड़ मरते हैं तो आपको भारतीय-अवस्था पर बड़ा ही दुःख, अनुताप और शोक हुआ।

मूल बात तो यों है कि स्वतंत्र देशों के पर्यटन के बाद आपने स्वदेश में पैर रक्खा तो इस संकल्प के साथ कि जैसे होगा वैसे भारत में वैसी ही अवस्था लाने का जी जान से यत्न करूंगा। कार्य प्रणाली में भले ही भेद हो किंतु ध्येय भारत का भी वही स्वतंत्रता और आत्म-मुक्ति होगी। लाला जी ने अपने हृदय में यह विचार दृढ़ कर लिया कि जैसे हो इस देश को भी स्वतंत्रता के वायुमंडल में विचरने तथा संसार की अन्यान्य स्वतंत्र जातियों की पंक्ति में सिर ऊँचा करके बैठने के योग्य बना कर ही चैन लें। चाहे इसके लिए आपदाएँ अनेक आवें, बाधायें लाख खड़ी हों।

इसी उत्तम भाव को लेकर आप तब से देश में काम करने लगे। स्वदेशी-प्रचार आपका पहिला राजनैतिक काम था।

उस वक़्त, जिस वक्त कि स्वदेशी की आवाज़ सिवा दो, चार को छोड़ और किसी के मुँह से सुन भी नहीं पड़ती थी आप स्वदेशी-प्रचार के अत्यंत पक्षपाती थे। आप सदा से सादे ही और स्वदेशी वस्त्रों में रहते हैं। आपने उस समय विदेशी-वहिष्कार की अनेक स्थानों में शिक्षा दी थी और स्वदेशी को देश के निर्वाण का साधन बतलाया था। सन् १९०७ में सूरत की कांग्रेस में भी आपने स्वदेशी पर जोर की स्पीच दी थी।

लालाजी का देशनिर्वासन

सरकारी-कामों पर आलोचनात्मक दृष्टि फेंकते रहने वाला और काम पड़ने पर कड़ी से कड़ी भाषा में बौछार करने वाला आदमी भला नौकरशाही की आँखों से कब बच सकता था। लाला जी ने जहाँ दस, बीस सरगर्म स्पीचें दीं, दो-चार लेख प्रकाशित किये कि सरकारी कर्मचारियों को उनमें अराजकता को बू मालूम पड़ने लगी। भूतपूर्व डा० इबर्टसन ने तो आपको पूरा अराजक ही समझ लिया था। लार्ड मार्ले का भी कुछ २ ऐसा हो ख़याल था। साफ़ बात तो यों है कि उस समय अवस्था बड़ी ही भयानक उपस्थित थी। एक ओर से सभी राजकर्मचारी आप पर दाँव लगाये बैठे थे। इसी बीच में काशी में कांग्रेस हुई। उसमें आप "बंगाल में दमन नीति" पर बड़े ज़ोर से बोल गये। ऐंग्लोइंडियन पत्रों ने बड़ा कुहराम मचाया। फल यह हुआ कि सरकार के कान बेतरह भरे गये। इस लिये सरकार न्याय और नीति का गला दबाकर आपको देशनिर्वासित करने पर तत्पर हुई।

जिसप्रकार आपकी गिरफ़ारी हुई, जिसतरह आप स्वदेश से बाहर भेजे गये, जिसप्रकार आपको मातृ-भूमि की गोद से खींच लिया गया, ये सब बातें एक आश्चर्य-जनक ऐन्द्रजालिक खेल की तरह हुईं।

ख़ैर, सरकार के पथ का कंटक इस प्रकार देश-निर्वासित किया गया।

लाला जी के देश-निर्वासन का समाचार बिजली की तरह देश भर में फैल गया। लाड़ले लालाजी को बँध कर जाते देखकर पंजाब की छाती दो टूक हो गई, देश ने आँसू

की धारा बहा दी, जनता ने हा ! हन्त !! की आवाज़ से गगन गुँजा दिया। गर्ज़े कि देश भर में स्थान स्थान सरकारी नीति पर लज्जा और लाला जी की गिरफ़्तारी पर अत्यंत शोक प्रकाशित किया गया। इतनी जागृति थी कि देखकर सरकार भी दाँतों तले उंगली दबाने लगी थी।

अमेरिका—प्रवास।

देश-निर्वासन की अवधि समाप्त होने पर लाला जी स्वदेश को लौटे। भारत माता ने अपना अंचल खोलकर आपको अपनाया, देश ने पुष्प-वर्षा की, दिशाएँ हर्ष से मुस्करा उठीं। देश में लाला जी कोई दो तीन बरस रहने पाये थे कि अमेरिका चलने का विचार होने लगा।

आप अमेरिका गये। ठीक इसी समय योरोपीय महा-संग्राम की रणभेरी बजी। युद्ध में सरकार का प्रधान भाग था। अतः देश से सहायता की याचना की गई। देश ने जन, धन, से सरकार की सहायता की। नेताओं ने सरकार की सारी कृष्ण करतूतों को भुलाकर सहायता करना निश्चित किया। लालाजी इस समय पूरे राजभक्त बन गये थे। आपने युद्ध में सरकार के भाग लेने पर अत्यंत हर्ष प्रकाशित किया था—आपने तत्कालीन वायसराय की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। इसका यह परिणाम हुआ कि जो एँग्लो इंडियन पत्र लाला जी के नाम मात्र से जल उठते थे वे भी अब आपकी पेट भर सराहना करने लगे। इतना सब होते हुए भी दुर्बोध नीति सरकार ने आपको लड़ाई के ज़माने तक स्वदेश आने की आज्ञा नहीं प्रदान की। फलतः जब राजराजेश्वर की घोषणा प्रकाशित हुई उस समय आप स्वदेश लौटने के लिए स्वतंत्र हुए।

अमेरिका-प्रवास में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक तो रिफ़ार्मस्कीम के विषय में लालाजी ने जो सम्मति प्रकाशित की थी वह, दूसरी पंजाब-हत्या-कागड के समय पाताल में रहते हुए आपने वेदना-विवश होकर जो काम किया था वह।

लालाजी उस समय रिफ़ार्मस्कीम के पक्ष में थे। यहीं तक नहीं, आपने स्कीम के लेखकों की खूब २ प्रशंसा भी की थी।

जिस समय पंजाब के हत्याकांड का शोकपूर्ण समाचार आपके कानों में पड़ा, आपका हृदय टूक टूक हो गया. आपकी आंखों ने रक्त के आँसू रोये, आपका चित्त खिन्न और हृदय छिन्न हो गया। आप सुदूर थे, और देश डायरशाही का शिकार और अत्याचार की खूनी तलवार का वार बन रहा था, यह बात आपको बहुत ही दुःख देती थी। किंतु, आख़िर आप करते तो क्या करते, समय ने आपको पाताल भेज दिया था, आज्ञा देना सरकार के हाथ में था, फिर आते तो कैसे आते। ऐसी दशा में जननी जन्म-भूमि की ओर अश्रु-प्लुत नेत्र से टकटकी बांधकर देखना और अन्याय-दलित देश-वासियों के साथ कोरी सहानुभूति दिखलाना उनके लिये अवशेष था।

भारत-आगमन।

अमेरिका निवासियों के अभिनंदनीय और अभागिनी भारतमाता के लज्जावीर लाजपतराय आख़िर २० फ़रवरी सन् १९१९ को भारत आ ही गये। दुःखिनी माता ने अपने अंक में अंचल पसार कर उन्हें लिया, देश ने अपने नेता का

स्थान स्थान स्वागत किया, पंजाब ने अपना करुण-क्रन्दन सुनाने के लिए पास बुलाया।

असहयोग और लाजपतराय ।

जिस समय लाला लाजपतराय ने स्वदेश में पैर रक्खा था, जिस समय आप सन् १६१६ में अमेरिका से भारत लौटे उस समय देश के सामने जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित था। युद्ध के समय प्राण प्रण से सरकार की सहायता पहुँचाने वाली हिन्दुस्तानी जाति पंजाब की भयानक हत्या से उद्विग्न मानस हो रही थी। जलियाँवाला बाग़ का भयंकर खून, ओडायर, डायर की करतूति, भारतजननी की लज्जा, देशवासियों का अपमान, निहत्थों पर किये गये घोर अत्याचार, ये सब बातें ऐसी थीं, जो मृतक हिन्दुस्तानियों में भी जागृति के भाव भर रही थीं।

ख़ैर, ऐसी दशा में सरकार की ओर से "हंटर कमेटी" की स्थापना हुई। आशा थी कि न्याय का नक्क़ारा पीटने वाली अंगरेज़ी जाति निहत्थों के ख़ून से फाग खेलने वाले अत्याचारियों को उचित दण्ड देगी, भारतवासियों के मान की रक्षा की जायगी, संसार के सामने कम से कम कहने को तो रह जायगा कि सरकार भारतीयों के जान माल का कम मोल नहीं रखती। किन्तु, आशा निराशा में परिवर्तित हो गई। धोखे की टट्टी उठी, अन्यायियों की पीठ ठोंकी गई, भलमनसाहत का ख़ून किया गया, अपनी अन्याय-परता का परिचय दिया गया, नौकरशाही की शान ज्यों की त्यों बनी रह गई।

कुछ लोगों का कथन है कि ऐसा होना एक प्रकार से ठीक ही हुआ। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो ख़ामख़ाह सरकार भी ठोंक पीट कर न्यायी बन गई होती और फिर तो संसार के सामने अपने न्याय का नक्कारा और ज़ोर से पीटती। ख़ैर, दुनिया को मालूम हो गया कि हमारी अंगरेज सरकार कितनी न्याय-शीला है।

सुतरां हंटर कमेटी की रिपोर्ट ने देश को नितान्त निराश कर दिया। देश के समस्त नेता अब इस विचार सागर में निमग्न होने लगे कि उन्हीं अफ़सरों के साथ, जिनके हाथ में शहीदाने वतन का ख़ून लगा हुआ है, भला कैसे सहयोग सम्भव है?

इधर यह प्रश्न था, उधर टर्की की सुलह ने मुसल्मानों को भी असन्तुष्ट किया। असहयोग का मंत्र गान्धी जी ने देश को बतलाया, लाला जी के सभापतित्व में कलकत्ते में कांग्रेस की विशेष बैठक हुई। असहयोग का प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। स्मरण रखना चाहिए, इस समय लाला जी असहयोग के कुछ प्रोग्राम से मतभेद रखते थे।

किन्तु, नागपुर की कांग्रेस में मतभेद का बिल्कुल नाम भी नहीं रह गया। लालाजी ने असहयोग आन्दोलन के पक्ष में कई ज़ोरदार व्याख्यान भी दिये, पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में भी बड़े मार्के की स्पीच दी, जो कांग्रेस के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य है।

नागपुर की कांग्रेस की तिथि से ही लाला जी असहयोग के एक प्रधान नेता और महात्मा गान्धी की सेना के एक मुख्य सेनप बन गये। कौंसिल के बायकाट, सरकारी स्कूलों और कालेजों से लड़कों को निकालने, तिलक स्वराज्य फंड के

लिए धन एकत्र करना, चरखे और करघे का प्रचार, स्वदेशी प्रचार तथा विदेशी-बहिष्कार आदि सभी प्रचार के अंगों में आप मुस्तैदी से काम करते रहे, तथा करते हैं। पंजाब में जो कुछ भी असहयोग का कार्य्य हुआ सब का श्रेय आप ही को है। कहना नहीं होगा कि जैसे बंगाल में त्यागी चितरंजन, संयुक्तदेश में पं० मोतीलाल नेहरू हैं ठीक उसी प्रकार पंजाब में पंजाबकेसरी लाला लाजपत राय का स्थान है।

आपने इसी असहयोग प्रचार कार्य्य के लिए लाहौर में तिलक पोलिटिकल स्कूल भी खोल रक्खा है।

अभी हाल में लाला जी ने बम्बई कांग्रेस में विदेशी-बहिष्कार पर बड़े ज़ोर की स्पीच दी थी। युवराज स्वागत के भी आप कट्टर विरोधी हैं। राजाज्ञाभंग करने के भी आप प्रस्तावक हैं।

लाला जी को देश कितना प्रिय है, लाला जी देश के लिये क्या कर सकते हैं, लाला जी कैसे दृढ़ विचार, चरित्रवान और राजनीतिपंडित नेता हैं, यह देश का बच्चा बच्चा जानता है। आप जिस काम को हाथ में लेते हैं उसको पूरा करने में जान पर भी खेल जाने में कभी घबराते नहीं। यही कारण है जो बीच बीच में कितनी अड़चनें आईं, कितनी मुश्किलें पेश हुईं फिर भी आप एक पग भी अपने निश्चित पथ से हटे नहीं, डटे रहे।

देशवासियों की ईश से यही प्रार्थना है कि देश का लाल और भारतमाता का लाजपत युग युग जीता रहे और देश को पैशाचिक पराधीनता के बंधन से मुक्त करने में समर्थ हो।

माननीय पं० मदनमोहन मालवीय।

जन्म।

राजनीति-विशारद माननीय पं० मदनमोहन मालवीय का जन्म २५ दिसंबर सन् १८६१ ईस्वी में तीर्थराज प्रयाग में हुआ था।

आपके पूज्य पिता पं० व्रजनाथजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् समझे जाते थे। श्रीमद्भागवत और अन्यान्य पुराणों की कथा कहने की आपको अत्यन्त रुचि थी। आपके कथा-कथन की शैली भी बहुत ही ललित और मधुर होती थी। स्वर्गीय महाराज दरभंगा और काशिराज आपको अति आदर की दृष्टि से देखते थे। आपने संस्कृत में कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं, जिनमें से कुछ को मालवीयजी ने प्रकाशित भी कराया है।

शिक्षा।

संस्कृत-विद्या-प्रेमी पिता ने आपको संस्कृत पाठशाला में भर्ती कराया। यहीं से आपके अध्ययन का श्रीगणेश हुआ। पहिले आप ज्ञानधर्मोपदेश पाठशाला में पढ़े और फिर विद्याधर्मवर्धिनी सभा में रहकर अध्ययन किया। तदनंतर आप अंगरेज़ी स्कूल में भेजे गये। प्रयाग ज़िला स्कूल से आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की, फिर स्थानीय म्योर सैन्ट्रल कालेज में भर्ती हुए। और यहीं से सन् १८८४ ई० में बी. ए. की डिग्री प्राप्त की। थोड़े दिन आपने एम्. ए. में भी पढ़ा किन्तु कुछ कारण वश वहीं तक करके छोड़ना पड़ा। इधर सात साल

तक आप बेकार बैठे रहे। और उसके बाद आपने एल. एल. बी. की परीक्षा पास की।

पंडितजी का विद्यार्थी-जीवन कुछ विशेष सराहनीय न था। हाँ यह था कि आप धार्मिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी चर्चों में विशेष रुचि दिखलाते थे। सार्वजनिक कार्यों में भी आप कम भाग नहीं लेते थे।

अध्यापन।

आपके घर की आर्थिक-अवस्था सन्तोष-जनक नहीं थी। यही कारण हुआ जो आपको बी० ए० की परीक्षा समाप्त करके तुरंत नौकरी की आवश्यकता हुई। आप सन् १८८४ ई० में स्थानीय गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में असिस्टेन्ट मास्टर नियुक्त हुए। आपने तीन वर्ष तक इसी पद पर काम किया। पहले वर्ष आपको केवल ५०) मासिक मिलते थे, किन्तु आगे चल कर आपका वेतन ७५) मासिक हो गया था।

आपने अध्यापन कार्य बड़ी योग्यता से सम्पादन किया था। गवर्नमेण्ट स्कूल में रहते हुए भी आप राजनैतिक सभाओं में आया जाया करते थे।

कहते हैं डा० सतीशचन्द्र बैनर्जी कुछ दिनों तक आपके शिष्य रहे थे।

पत्र-संपादन।

कालाकांकर के परलोकवासी राजा रामपाल सिंह उन दिनों "हिन्दुस्तान" नामक हिन्दी में एक पत्र निकाल रहे थे। मालवीयजी की उनसे भेंट थी। अतः राजा साहब ने आपसे उक्त पत्र के संपादन के लिए अनुरोध किया। आपने कई कारणों से शीघ्र इस अनुरोध को स्वीकार किया और

अध्यापन कार्य त्याग कर सन् १८८७ में "हिन्दुस्तान" के संपादक बन बैठे।

यहाँ आपका वेतन २००) मासिक था। जब तक आप हिन्दुस्तान के संपादक के आसन पर विराजमान रहे बड़ी योग्यता से कार्य संपादन करते रहे। क्या प्रजा और क्या राजा सभी आपकी योग्यता के क़ायल रहे।

कुछ दिन के बाद "हिन्दुस्तान" का संपादकत्व छोड़ कर आप पं० अयोध्यानाथजी के प्रयत्न के फल स्वरूप 'इंडियन-ओपीनीयन" नाम के अंगरेज़ी पत्र का संपादक करने लगे। यह पत्र अपने समय में भारतीय आकांक्षाओं का एक मात्र पोषक था। प्रजा की वेदनाओं को बहुत निर्भीकता के साथ सरकार के सामने रखने में कभी घबराता न था।

मालवीयजी पत्रों के विशेष पक्षपाती हैं। आपका कहना है कि "राष्ट्र-निर्माण में समाचार पत्रों का यथेष्ट भाग है। ये जनता के संदेश को सरकार को सुनाते हैं। ये प्रजा को हितकर साधनों का उपदेश देते हैं। सरकार के कार्य्यों की आलोचना करना; प्रजा की वास्तविक आवश्यकता को सरकार से प्रकट करना, प्रजा के मुख्यतः कार्य होते हैं।"

यह मालवीजी की समाचार पत्रों के प्रति दृढ़ भक्ति का ही फल है जो "अभ्युदय" का जन्म हुआ और दैनिक "लीडर" प्रयाग से निकलने लगा।

वकालत।

धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी चर्चा की ओर मालवीयजी की विशेष रुचि और प्रवृत्ति थी, अतः आप वकालत की ओर आना नहीं चाहते थे। किन्तु आपके सम्मानित मित्र पं०

अयोध्यानाथ, राजा रामपालसिंह, पं० सुन्दरलाल तथा शुभ-चिन्तक मि० ह्यूम ने आपको इधर आने को बाधित किया था। मित्रों की आज्ञा का अवहेलना करना आपके लिए सहज काम न था, अतः विवश होकर आपको वकालत का बाना धारण करना पड़ा।

आपने सन् १८९३ में इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत आरंभ की। वकालत के कामों को हाथ में लेने के कारण आप कांग्रेस के कामों में कुछ कम भाग लेने लग गये। इस पर पं० अयोध्यानाथ ने एक दिन मि० ह्यूम से कहा कि अब तो पं० मदनमोहन, वकील हो गये हैं, कांग्रेस की ओर इनका ध्यान कम हो गया है। मि० ह्यूम ने उत्तर दिया-बड़ा अच्छा है। उन्हें अपना ध्यान क़ानून में ही लगाना चाहिये और फिर मालवीयजी को बुलाकर आपने कहा—

"मदन मोहन! ईश्वर ने तुम्हें बुद्धि प्रदान की है यदि तुम डट कर इस वर्ष वकालत कर जाओ तो निश्चय तुम वकालत की चोटी पर पहुँच जाओगे। उस समय तुम्हारी कीर्ति कौमुदी चारो ओर छिटक जायगी-और फिर तुम देश और जाति के लिए बहुत कुछ कर सकोगे।"

मि० ह्यूम न जाने क्यों मालवीयजी को वकालत पर बहुत ज़ोर दे रहे थे। आपके शब्दों से पता चलता है कि आप चाहते थे कि सब ओर से अपनी बिखरी शक्तियों को एकत्र करके मालवीय जी इस स्वर्ग सोपान पर चढ़ने में लग जावें। जो कुछ हो मि० ह्यूम के भाव मालवीयजी के प्रति अत्यंत शुद्ध थे। वे आपको फूलते फलते देखना चाहते थे। इतना होते हुए भी कोई स्पष्टवादी यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि मालवीयजी सोलहो आना मि० ह्यूम के कहने पर

चले होते तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप वकालत की चोटी पर पहुँच गए होते, किन्तु इस लोक-प्रियता और समादर के आसन पर कदापि न बैठने पाते जिसपर वे विद्यमान हैं।

बहुत अच्छा हुआ जो आपने अपनी नियत प्रवृत्ति को बेतरह नहीं मोड़ी। आप वकालत केवल जीवन-निर्वाह की दृष्टि से करते थे। आपका अधिक समय देश के कामों में ही व्यय होता था। और यही कारण हुआ जो चलती हुई वकालत पर लात मार, अपना स्वार्थ-त्याग करकेआख़िर आप कार्य-क्षेत्र में एकदम कूद पड़े। और तभी से देश-सेवा कर रहे हैं।

कांग्रेस ।

सन् १८८६ ई० में इंडियन नेशनल कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन कलकत्ते में हुआ था, स्वर्गीय श्रीयुत दादाभाई नौरोजी उसके सभापति थे। यही पहला अवसर था जब कि मालवीयजी कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे।

कांग्रेस की कार्यवाही हो रही थी-व्याख्यान दिये जा रहे थे। इतने में बैठे बैठे आपके हृदय में कुछ बोलने की आकांक्षा उदय हुई। पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने उत्तेजना दी। निदान आप भाषण करने के लिये सहसा राष्ट्रीय महासभा के मंच पर खड़े हो गये। आपकी वक्तृता बहुत ही उत्तम और सार-गर्भित रही। आगत जनता मुग्ध हो गई। मि० ह्यूम आपके भाषण के बहुत ही क़ायल रहे। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में उस व्याख्यान की चर्चा बड़े सुन्दर शब्दों में लिखी है।

दूसरे साल मदरास की कांग्रेस में भी आप सम्मिलित हुए। वहाँ भी आपकी स्पीच बड़े मार्के की रही। राजा सर टी० माधवराव, दीवानबहादुर राजा रघुनाथ राव, तथा

पी० भाई नार्टन आदि ने आपके व्याख्यान की बड़ी प्रशंसा की।

आपकी मुग्धकारी मधुर व्याख्यान-शैली का इतना प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों में आप कांग्रेस के चुने हुए लोगों में समझे जाने लगे।

बहस में आप दलील करना भी खूब अच्छी तरह जानते थे। परलोकवासी सर फीरोज़शाह मेहता, मि० केन, मि० डिगवी आदि विद्वान उस वक्त में आपकी प्रशंसा किया करते थे।

मि० ह्यूम के कहने पर आप इसी साल संयुक्त प्रान्तीय असोसियेशन तथा कांग्रेस की स्थायी समिति के सेक्रेटरी बनाये गये और कई साल तक आप यह काम करते रहे।

सन् १८८८ में कांग्रेस का अधिवेशन प्रयाग में हुआ। इस वर्ष कांग्रेस के कार्य-कर्त्ता मंत्री पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० अयोध्यानाथ के प्रयत्न से सराहनीय सफलता रही। सन १८९२ में भी कांग्रेस प्रयाग में आमंत्रित था, किन्तु पं० अयोध्यानाथ जी की शोकजनक मृत्यु हो जाने के कारण डाँवा डोल शक्ति हो रही थी। प्रयाग में न होने की चर्चा उड़ रही थी। परन्तु कतिपय सज्जनों ने ऐसा होना स्वर्गीय पं० जी की नगरी के लिए बड़ा अपमान समझा। इन कुछ सज्जनों में हमारे पं० जी सबसे आगे थे, अंत में पं० विश्वम्भर नाथ की सहायता से द्वितीय बार भी कांग्रेस की बैठक यहाँ बड़े धूम धाम से हुई।

तभी से आपकी अनन्य देश-सेवा का उपक्रम कांग्रेस की कार्यावली द्वारा होता आ रहा है। सन् १९०८ में लखनऊ की प्रान्तीय कान्फ्रेंन्स में आपने सभापति की कुर्सी को सुशो-

भित किया था। १६०६ में लाहौर की कांग्रेस के भी आपही सभापति थे।

कौंसिल की मेम्बरी।

सन् १६०२ में पं० विश्वम्भरनाथ ने वृद्धावस्था के कारण व्यवस्थापक सभा से अपना सम्बन्ध त्याग दिया। इसी वर्ष मालवीय जी उन की जगह व्यवस्थापक सभा के मेम्बर हुए और तभी से आप सुधार स्कीम के प्रचलित होने तक मेम्बर होते चले आ रहे थे।

कौंसिल में आपकी दलीलें बड़ी लासानी होती थीं। मिन्टो मार्ले रिफ़ार्म के पहिले जब अकेले मालवीय जी हो कौंसिल में थे उस समय भी आप जनता की आकांक्षाओं के लिए घंटों लड़ा करते थे। यद्यपि बहुमत के आगे सिर झुकाना पड़ता था फिर भी ये अपनी वक्तव्य-कला से सभासदों को चकित किये बिना नहीं छोड़ते थे। अंगरेज़ सभासद आपसे बहुत घबराते थे। आपकी लम्बी स्पीचों से घबराकर वे सभा-सदन से प्रायः निकल आया करते थे।

थोड़े दिन हुए डी सेन्ट्रलाइज़ेशन कमीशन (Decentralisation commission) बैठी थी। उसमें अनेक लोगोंकी गवाहियां हुईं। उनमें भी मालवीय जी की गवाही बड़े मार्के की है।

अपनी गम्भीरता, योग्यता और दायित्वपूर्ण-स्वतंत्रता आदि गुणों के कारण आप इम्पीरियल कौंसिल के भी मेम्बर निर्वाचित हुए। यहाँ भी आपकी वही रीति और निर्भीक नीति रही। यद्यपि अभी कुछ फल न हुआ, तथापि आपने चार २ घन्टे बोलने में कसर न छोड़ी। आपने अपना काम किया और कौंसिल ने अपना काम।

इधर जब से नई स्कीम प्रचलित हुई है तब से आपने कौंसिलों की मेम्बरी से असहयोग कर रक्खा है। इस असहयोग के कई गूढ़, गवेषणा-गर्भित तथा कूटनीति--निहित कारण बतलाये जाते हैं।

असहयोग-आन्दोलन ज़ोर पर था। देश के पूज्य नेता महात्मा गांधी तथा उनके पक्ष वाले अन्यान्य वीर देश-भक्त कौंसिलों के वहिष्कार का राग अलाप रहे थे। देश का स्वर उनके साथ था। लोकमत उसकी झन्कार पर नाच रहा था। इसीलिये लोकमत का आदर करने तथा अपवाद के भय से आपने कौंसिल में जाने से इन्कार कर दिया, यह एक पक्ष की राय है। इसी प्रकार दूसरे पक्ष के लोग कुछ कारण भाँपते हैं। ख़ैर इससे क्या गर्ज़ है। आपने शायद स्वयं इसका कारण पत्रों द्वारा बतलाया, जिसमें प्रधान कारण था आपका अस्वस्थ रहना। किसी तरह हो जो हुआ अच्छा ही हुआ।

देश की टेक रह गई। आपका भी आदर रह गया। आगे ईश्वर जानें।

अन्यान्य-कार्य।

व्यवसाय और उद्योग।

पंडित जी कोई तीस वर्षों से स्वदेशी के पक्षपाती हैं। वे स्वयं तो स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते ही हैं, यही नहीं दूसरों के लिये भी स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का उपदेश दिया करते हैं। इतना होते हुए यह देश का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है जो आज आप स्वदेशी आन्दोलन तथा विदेशी-वस्त्रों के वहिष्कार में पूजनीय महात्माजी का हाथ नहीं बँटा रहे हैं। शायद असहयोग के दायरे के अन्दर आ जाने से आप

इसमें भी हाथ लगाना ठीक नहीं समझते हों। कुछ लोग इसका कारण यह भी लिखते हैं कि आप वहिष्कार-नीति (Bycott) के पक्षपाती नहीं हैं।

जो हो स्वदेशी के लिए जो उद्यम आपने किया है वह कहीं गया नहीं है। सन् १८८१ ई० में आपने प्रयाग में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार के लिए एक " देशी तिजारत कम्पनी " क़ायम करायी।

सन् १६०५ ई० में आपने भारतीय-व्यवसाय समिति को जन्म दिया और सन् १६०७ में संयुक्त प्रान्तीय व्यवसाय समिति को संगठित कराया। इसी वर्ष आप नैनीताल की इन्डस्ट्रियल कान्फ्रेंस के मेम्बर भी बने थे।

इसी प्रकार और कितने व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाले देश में काम हुए हैं जिनमें आपने उचित भाग लिया है।

समाजोपकार।

कहना नहीं होगा कि समाज-सेवा का भाग आप में बचपन से है। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के लिए आप सदा उतावले रहे हैं। प्रयाग को " साहित्यिक-समिति" (Literary institution) आपकी आरंभिक लीला थी।

प्रयाग में जिस साल पहले पहल प्लेग का प्रकोप हुआ था उस समय आपने सार्वजनिक सेवा में तत्कालीन कलेक्टर मि० फेएड के साथ बहुत ही सराहनीय काम किया था।

पंजाब के हत्याकाण्ड की जाँच के लिए आपने जो परिश्रम किया है वह किसी से छिपा नहीं है।

ग़र्ज़ कि समाज-उपकार का आप में भारी गुण है। जहाँ कहीं देश में उपद्रव हुआ आप दौड़े दौड़े पहुँचे और लोगों

के दुःख में सहानुभूति के आँसू गिराये, उनके दुःख दूर करने के यत्न में लग गए।

धार्मिक–कार्य।

धर्म आपका प्राण और कर्मकाण्ड आपका जीवन है। आप बड़े पक्के सनातन-धर्मानुयायी हैं। धर्म और ईश्वर में आपकी अनन्य श्रद्धा है। आप श्रीमद्भागवत की पोथी साथ साथ रखते हैं और कहते हैं कि मरने के समय एक भागवत की पुस्तक मेरे सरहाने रक्खी होनी चाहिए। इन दिनों आप काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को पौराणिक कथाएँ भी सुनाया करते हैं।

फिर भी आपने हिन्दी के लिए बहुत कुछ किया है। "अभ्युदय" तथा "मर्यादा" के दो हिन्दी पत्रों को जन्म दिया है, स्वयं हिन्दी में प्रायः बोलते और कभी कभी लिखते भी हैं। आप एक बार हिन्दी–साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद भी को शोभित कर चुके हैं।

आपका विचार है कि स्कूलों में लड़कों की धार्मिक शिक्षा की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। आपने अपने विचारों को अपने निज उद्योग-निर्मित काशी हिन्दू-विश्व-विद्यालय में कार्यरूप में परिणत भी किया है।

हिन्दी–प्रचार।

मातृ-भाषा हिन्दी के लिए आपने बहुत कुछ किया है तथा कर रहे हैं। आपका विचार है कि हिन्दू-विश्व-विद्यालय में हिन्दी का स्थान ऊँचा हो। अभीतक यह विचार प्रौढ़-कार्यरूप नहीं धारण कर सका है। आशा भविष्य के गर्भ में है।

आपका कचहरियों में देवनागरी लिपि का प्रचार सम्बन्धी कार्य सब से सराहनीय है। आपने लगातार तीन साल तक यह आन्दोलन जारी रक्खा, और आख़िरकार सर ऐन्टनी मेकडानल के शासन काल में कचहरियों में देवनागरी लिपि के लिखे जाने का प्रस्ताव पास ही करा लिया। यह आपही के उद्योग का फल है कि अब जो चाहे अपनी अर्ज़ी सरकारी अदालतों में हिन्दी में लिख कर दे सकता है।

इसके लिए हिन्दी-माता आपको सदा साधुवाद देगी।

शिक्षा-सम्बन्धी-कार्य।

पं० मदनमोहन मालवीय शिक्षा-प्रचार के बड़े कट्टर पक्षपाती हैं। विद्यार्थी-मण्डल आपको अत्यन्त प्रिय है। आप विद्यार्थियों के कष्ट पर विशेष दृष्टि रखते हैं। दीन विद्यार्थी आप से सदा सहायता की आशा रखते हैं।

बहुत दिन पहले प्रयाग में आये हुए विद्यार्थियों के ठहरने की बड़ी तक़लीफ़ थी। यह देख मालवीय ने एक छात्रालय खोलने का विचार किया। माननीय पं० सुन्दरलाल ने इस काम में आपकी बड़ी सहायता की। अन्त में आपने धन-संग्रह करके "मेकडानल हिन्दू-बोर्डिंग हाउस" खोल ही दिया। जो आज भी प्रयाग की उपकारी संस्थाओं में एक प्रसिद्ध संस्था है।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय।

हिन्दू बोर्डिंग के संस्थापित होते ही धुन के पक्के मालवीय जी को हिन्दू विश्वविद्यालय खोलने की धुन सवार हुई। आपने अपने कतिपय गण्यमान्य मित्रों से अपना संकल्प उद्घाटन

किया। उनमें से कुछ ने आपके विचार की भरपेट सराहना की। स्वर्गीय सुन्दरलाल उनमें से उल्लेखनीय पुरुष हैं।

फलतः इन्होंने दृढ़ विचार से विश्वविद्यालय के कार्य को हाथ में ले लिया और उसके लिए अविरल श्रम से धन एकत्र करने लगे। नगर नगर, गाँव गाँव घूमकर उसके लिए धन संग्रह किया और अभी तक करते जा रहे हैं। परिश्रमी वीर का श्रम सफल हुआ। कीर्ति-स्तम्भ काशी के नगवा स्थान पर बन कर खड़ा हो गया और आपका संकल्प पूर्ण हुआ।

आज विश्वविद्यालय का जितना भाग बन कर तैयार है उतना देखने ही योग्य है। मालवीयजी भवन के कनक-कंगूरे पर से अपनी कीर्ति-ध्वजा को फहराते देखकर फूले नहीं समाते हैं। उनका विश्वास है कि स्वर्ग से सुन्दरलाल जी भी झाँक झाँक कर प्रसन्न होते होंगे।

कहना नहीं होगा कि विश्वविद्यालब से आपको कितना प्रेम है। आपका विचार उसे और भी उन्नत देखने का है और आदर्श तक्षशिला और नलिंद विश्वविद्यालय है। दृढ़ व्रती का विचार सफल होगा, क्योंकि सत्य-संकल्प साथ है।

आपने इन दिनों अपनी समस्त शक्तियों को विश्वविद्यालय की ओर लगा दिया है। असहयोग की आँधी ने जिस समय आपकी फलवती कीर्ति-लता को उखाड़ फेंकने का उपक्रम आरंभ किया था, उस सयम आप बड़े उद्विग्न हो रहे थे। आख़िरकार आपने उसे सुकामना कर की छाया करके बचा ही लिया। आपने इसके लिए अनेक अपवाद सहे, अनेक लोगों की अनेक बातें सुनीं किन्तु आप अपने निश्चित पथ से विचलित नहीं हुए। घबरा कर या लोकापवाद के

भय से सबके साथ असहयोग की देश-व्यापी युद्ध में सम्मि-लित नहीं हुए अपनी ही बात पर जमे रह गये।

कहना नहीं होगा कि देश आपकी नीति से इस समय बेतरह क्षुब्ध है। देश चाहता है कि आप असहयोग की सेना में भर्ती हों और दमन-आसुरी का नाक कटकर भारत की नाक रखने में देशभक्तों का साथ दें। लेकिन आप मौन व्रत धारण किये अपना काम कर रहे हैं। यही नहीं सुना गया है आप युवराज-स्वागत-समिति के सभासद भी निर्वाचित हुए हैं। जिस समय देश, सरकार की वर्तमान शासन-प्रणाली से असन्तुष्ट हो रहा है, जिस समय देश में युवराज के आने के दिन हड़ताल करने का निश्चय किया जा रहा है, उस समय गरम दल के आप जैसे नेता का युवराज-स्वागत-समिति में भाग लेना देश को भ्रम में डाल रहा है।

अन्त में यह बतला देना उचित जान पड़ता है कि वर्तमान आन्दोलन में आपका कुछ भी मोल न हो तो न हो, असहयोग आन्दोलन में भाग न लेने के कारण आप लोकमत की नज़रों से गिर ही क्यों न गये हों, किन्तु आपकी अनन्य देश-भक्ति में किसी को भी सन्देह न होना चाहिए। स्वयं गांधीजी भी उनकी सराहना करते हैं। आपके दृढ़ विचार के लिये हमारे हृदयों में आपके प्रति श्रद्धा और आदर के भाव होने चाहिए।

देशभक्त पं० मोतीलाल नेहरू ।

जन्म ।

देश के समुज्वल रत्न स्वनामधन्य देशभक्त पण्डित मोतीलाल नेहरू का जन्म मई सन् १८६१ ई० में हुआ था ।

आपके पूज्य पिता दिल्ली के कोतवाल थे । लक्ष्मी की आप पर असीम कृपा थी । सरस्वती ने भी आपके भवन को पवित्र कर रक्खा था । अरबी और फ़ारसी के अन्दर आपकी बहुत अच्छी पैठ थी ।

दुःख तो यह है कि आपकी जन्म-तिथि के चार मास पूर्व आपके पिता परलोक-वासी हो चुके थे । अतः बालक मोतीलाल पिता की देख रेख से बंचित रहे । पिता की मृत्यु के बाद आपके भाई पंडित नंदलाल नेहरू ने आपके पालन पोषण का भार अपने ऊपर लिया । इस भार को आप ने किस योग्यता से वहन किया, इसका प्रमाण स्वतः आपके जीवन की घटनाएँ हैं ।

शिक्षा ।

कहना नहीं होगा कि कश्मीरी होने के कारण आपका घर मानों अरबी और फ़ारसी का एक ख़ासा अच्छा मक़तब था । इसलिये यह स्वाभाविक था कि बालक मोती की शिक्षा का श्रीगणेश घर से ही आरंभ होता । ठीक यही हुआ भी ।

बारह वर्ष तक आप घर पर ही अरबी और फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त करते रहे। यहाँ से आप कानपुर सरकारी हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गये। यहाँ से आपने इंट्रेंस की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् पंडित जी प्रयाग के म्योर कालिज में प्रविष्ट हुए। वहाँ आप चार वर्ष तक रहे, किन्तु कुछ कारण वशात् आप बी० ए० की परीक्षा में सम्मिलित नहीं हुए। इसके बाद आप हाईकोर्ट वकील की परीक्षा में बैठे, औव्वल नम्बर में आये। परीक्षा में प्रथम आने के उपलक्ष्य में आपको एक पदक भी प्रदान किया गया था।

वकालत।

वकालत की परीक्षा पास करके आप कानपुर आये। वहाँ आपने कोई तीन साल तक अपनी वकालत की। वकालत की प्रगति अच्छी मालूम हुई, भविष्य उज्वल दिखाई पड़ा, अतः आपने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाना चाहा। अंत में इसी विचार ने आपको तीन वर्ष के उपरान्त प्रयाग आने और वहीं हाईकोर्ट में वकालत करने पर वाधित किया। इसका कुछ कारण तो यह भी था कि आपके बड़े भाई नंदलाल नेहरू इस समय हाईकोर्ट में ही वकालत करते थे। उनकी आमदनी भी काफ़ी अच्छी थी। परिस्थिति अच्छी थी किन्तु जो सोचकर आप प्रयाग चले थे वह न हुआ। अभाग्यवश पं० नंदलाल जी को विधाता ने छीन लिया। अवस्था शोचनीय उपस्थित हुई। गृह का व्यय-भार सँभालना कठिन हो गया। किन्तु इससे आप तनिक भी घबराये नहीं—सदा की भाँति इस विपत्ति अवसर पर भी धीरज के साथ डँटे रहे। केवल इतना अवश्य किया कि आप ने वकालत के

कामों में पहले से अधिक दिलचस्पी लेना शुरू किया। कुछ अधिक समय अपने कामों में देने लगे—कुछ अधिक परिश्रम और योग्यता से क़ानूनी काम करने लगे, फल यह हुआ कि पाँच ही वर्ष में आप दो हज़ार रुपये मासिक कमाने लग गये। आपकी प्रतिभा का प्रकाश बढ़ने लगा, आपकी योग्यता की मुहर लगने लगी आपकी वकालत चल निकली। अब क्या था, अब तो आप प्रयाग के वकीलों में सब से बढ़े चढ़े हो गये। आपका नैतिक-ज्ञान इतना बढ़ा कि सरकार ने आपको ऐडवोकेट नियुक्त कर लिया।

इस स्थान पर यह बतला देना अनुचित न होगा कि इसी सम्बन्ध में पंडित जी कई बार योरप भी जा चुके हैं।

कौन्सिल

सन् १९०९ ई० में पंडित जी संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के मेम्बर चुने गये थे। तदनन्तर प्रत्येक निर्वाचन में आप जनता के प्रतिनिधि रहे। व्यवस्थापक सभा में आपने किस निर्भीकता और योग्यता से काम किया है, वह तत्कालीन किसी भी मेम्बर से अविदित नहीं है। आप जनता की ओर से लड़ने में, प्रजा के मत को सरकार के सामने रखने में, सरकारी भूलों को दिखलाने में कभी हिचकते न थे। सच तो यह है आप प्रजा के प्रतिनिधि बन कर काम करते थे। कौंसिल में आपको स्वाभिमान और आत्म-गौरव का विशेष ध्यान रहता था। अपनी शान के ख़िलाफ़ एक बात भी आप सहन नहीं कर सकते थे। सन् १९१७ ई० की बात है जब संयुक्त प्रान्तीय रुड़की कालिज के अंगरेज़ प्रिन्सपल मि० वुड ने भारतवासियों के आचरणों पर कुछ

टीका टिप्पणी की थी। ऐसा करने में आप समता और न्याय की सीमा को उल्लंघन भी कर गये थे। इस पर भारतीय जनता अत्यन्त क्षुब्ध थी, समाचारपत्रों के कालम विरोध में रँगे आ रहे थे, उस समय माननीय पंडित जी ने उक्त सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, जिसका आशय यह था कि इस प्रान्त की सरकार, रुड़की कालिज के अध्यापक मि० वुड के कार्य पर निन्दा प्रकट करती है। प्रस्ताव पर आपका व्याख्यान भी हुआ। आपके बोल चुकने पर सरकार की ओर से कहा गया कि मि० वुड ने एक पत्र भेजा है, जिस पर उन्हों-ने अपने आचरण पर पश्चात्ताप किया है। इतना ही नहीं पंडित जी से पूछा गया कि आपको सन्तोष हुआ कि नहीं ? पंडित जी ने उत्तर दिया "नहीं"। तदनंतर दूसरे सभासद बोले। उनके बोलते ही सर जेम्स मेस्टन उठ खड़े हुए और पंडित जी को उत्तर देने का अवसर दिये बिना मत-संग्रह आरम्भ करने लगे। इस पर पंडित जी से न रहा गया। आप झट खड़े, हुए और उत्तर देने के अधिकार से लाभ उठाने का अनुरोध किया। सभापति ने कुछ भी न सुना। पंडित जी इस अपमान को न सहन कर सके। आपने बड़ी गम्भीरता से कहा कि जिस सभा में मेरे अधिकार इस बुरी तरह से कुचले जाते हैं, उस सभा में मैं सभासद की हैसियत से भविष्य में उप-स्थित न होऊँगा। यह कहकर पंडित जी कौंसिल से उठकर चल दिये। बाद को माननीय पं० सुन्दरलाल जी ने आपको बहुत समझाया तब कहीं जाकर दूसरे दिन आपने कौंसिल में पैर रक्खा। यहाँ बतला देना उचित जान पड़ता है कि स्वयं सर जेम्स मेस्टन ने डा० सुन्दरलाल से पंडित जी को समझाने के लिए कहा था।

कौंसिल के बाहर आपका कार्य।

पं० मोतीलाल जी संयुक्त प्रांत के प्रकाशन-समिति Pwbli city Board के सभापति भी रह चुके हैं। आप ने भारतरक्षिणी सेना के सेना-संगठन में सरकार की बड़ी सहायता दी थी। सन् १६१४ में आप प्रयाग म्यूनिसिपैलिटी के सभापति चुने गये थे, किन्तु प्रजा-मत स्वीकार कर आप ने दो साल बाद उस पद से त्याग-पत्र दे दिया। आप प्रयाग-सेवा-समिति के उपसभापति तथा विद्यामंदिर हाईस्कूल की संचालन-समिति के सभापति भी हैं।

गर्ज़ कि असहयोग आन्दोलन में भाग लेने से पहिले आप बहुत से सरकारी और ग़ैर-सरकारी कामों में भाग लेते थे।

प्रयाग होमरूल लीग का जन्म
और
उसमें पंडित जी का भाग।

१६ जून सन् १६१७ ई० को श्रीमती एनीबिसेण्ट नज़र-बन्द की गइ। आपकी नज़र-बन्दी ने देश में हलचल पैदा कर दी। देश में सनसनी फैल गई। चारों ओर जागृति का सूर्य निकल आया। राजनैतिक आन्दोलन का सोया हुआ सिंह अंगड़ाई लेने लगा।

फलतः ता० २२ जून को नरम और गरम दोनों दल के नेता पंडित जी के आनन्द-भवन में आ एकत्र हुए और प्रयाग-होम-रूल को जन्म दिया।

कहना नहीं होगा कि पहले माननीय तेजबहादुर सप्रू और मि० चिन्तामणि भी उक्त लीग के जन्म-दायक नेताओं

में थे। ये लोग सदा से सरकारी व्यक्ति रह चुके हैं अतः पीछे से इन लोगों ने लीग से अपना नाम कटा लिया। किन्तु इससे लीग को कोई धक्का न पहुँचा। कारण, केवल यह था कि माननीय पंडित जी उसके सभापति थे। आप के कारण लीग को आशातीत सफलता हुई। लीग के पास सार्वजनिक सभाओं के लिए एक व्याख्यान-भवन भी बनकर तैयार हो गया। जो आज भी आपकी कीर्ति का स्तवन कर रहा है।

कांग्रेस।

मान्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट क्या प्रकाशित हुई—कांग्रेस के संगठित-जीवन का तीन तेरह हो गया। नरम-दलवाले कांग्रेस से अलग हो गये। अवसर बिकट था। समय नेताओं की परीक्षा का था। संयुक्त प्रान्त के युवक घबरा रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे हीन-प्रान्त के नेता पं० मदनमोहन मालवीय तथा नेहरू महोदय हम लोगों को छोड़ नरम-दल में चले जाँय। किन्तु हर्ष है कि आप दो सज्जनों ने कांग्रेस का साथ नहीं छोड़ा। आपलोगों के साथ देने से दूसरे प्रान्त के वे नेता भी जो आगा पीछा कर रहे थे एक निश्चय पर आये और कांग्रेस तट पर आ लगे।

उसी शुभ-तिथि से आज तक पंडित जी गरम-दल के साहसी नेता की भाँति दृढ़ता से काम करते चले आ रहे हैं। संयुक्त प्रान्त में जो कुछ राजनैतिक जीवन आया है, उसके मूल कारण आप ही कहे जा सकते हैं। देश की राजनैतिक जागृति में भी आपका कम भाग नहीं रहा है। इसी राष्ट्रीय जागृति के लिए, "लीडर" से राष्ट्रीयता तथा कांग्रेस का काम न होते देखकर आपने—

इंडिपेन्डेंट

नामक दैनिक अंगरेज़ी पत्र प्रयाग से निकाला है। यह पत्र राजनैतिक-मतके प्रचार में इस समय क्या काम कर रहा है यह किसी से छिपा नहीं है। इसको असहयोग का मुख-पत्र कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

पंजाब का हत्याकाण्ड।

पंजाब के हत्याकाण्ड से देश का बच्चा २ परिचित है। कौन ऐसा देश का सपूत है, कौन ऐसा माई का लाल है, कौन ऐसा भारत का भक्त है जो पंजाब के हत्याकाण्ड की रोमाञ्च-कारी-करुणामयी घटनाओं को पढ़ कर रो न दे।

पंजाब में क्या हुआ, नौकरशाही ने कैसे न्याय के गले पर अपनी तेज़ छुरियाँ उतारीं, सरकार ने कैसे निहत्थे देश-बन्धुओं का खून पीया, ये बातें हमको मालूम भी न हुई होतीं यदि हमारे पंडित जी जैसे दो, एक और उद्योगी देश-भक्त परिश्रम उठा कर उन घटनाओं पर प्रकाश न डालते।

पंजाब हत्याकाण्ड के समय आपने जो सराहनीय काम किया है उसे देशका प्रत्येक पुरुष जानता है।

इसी उद्योग-पूर्ण देश-सेवा का फल है जो देश ने आपको ३४ वीं अखिल भारतवर्षीया राष्ट्रीय महासभा अमृतसार के सभापति का आदर-प्रदान किया।

असहयोग-आन्दोलन और पंडित जी।

जिस दिन असहयोग-आन्दोलन विचार के गर्भ में ही था, जिस समय असहयोग प्रस्ताव के रूप में कांग्रेस के सामने आया भी न था उसी दिन और उसी समय से संयुक्त प्रान्त

के रत्न और हमारे चरित्रनायक पूज्य पंडित जी महात्मा गान्धी जी महाराज के साथ हैं। आप असहयोग के आदि पक्षपाती हैं। कारण इसका यह मालूम देता है कि आप पंजाब गये, वहाँ की अवस्थाओं को अपनी आँखों से देखा, नौकरशाही और सरकार के अत्याचारों के वीभत्स अभिनय का दर्शन किया. बन्धुओं के ख़ून से रँगी पंजाब भूमि की झाँकी की, भारतीय-ललनाओं के दामन पर आँसू की बूदें पायीं, जिससे आपका हृदय पिहल उठा—आप अपने को सँभाल न सके। आपके मुख से निकल गया कि बस, अब अन्यायी सरकार से सहयोग कर चुके।

जैसा कि सन्यासी श्रद्धानन्द ने एक बार लिखा था, असहयोग के आन्दोलन ने आपको पूरा फ़क़ीर बना दिया है। बात भी ठीक यही है। नहीं तो विलास की कौनसी कोटि है जिसपर आपका पैर न पहुँच चुका हो। आप पहले दर्जे के विलास-प्रिय रहे हैं, आप बड़े भारी आराम-पसन्द और शौकीन रह चुके हैं।

किन्तु इस समय आपकी दशा बिल्कुल परिवर्तित है। जिसने आपको आज से पाँच वर्ष पूर्व देखा है, वही आज आपको देख कर दाँतो तले अंगुली दबाता है। इसका कारण यही है कि आज आपने स्वदेश का बाना धारण कर लिया है; आज आप पर वह पहिला ठाट बाट वा लिवास नहीं रहा।

असहयोग ने पंडित जी के जीवन को एक ऐसे साँचे में ढाल दिया है जिसका किसी को कभी ध्यान भी न था। आज पंडित जी देश के एक आदर्श सन्यासी हैं। आप जिस त्याग और देश-भक्ति से इस समय काम कर रहे हैं वह सराहनीय और अत्यंत अनुकरणीय है। आपही क्यों आपका सारा

परिवार इन दिनों देश की पवित्र वेदी पर बलिदान होने को तैयार है। आपके प्रिय पुत्र पं० जवाहिरलाल नेहरू जो देशका काम कर रहे हैं वह किसी से छिपा नहीं है। सुखस्थ युवक का देश के लिए इस प्रकार त्याग के साथ मैदान में कूद पड़ना कम मूल्य नहीं रखता। ईश्वर करे युवक जवाहिर लाल देश में फ़तहसिंह सा नाम पावें।

पं० मोतीलाल जी ने असहयोग के लिए क्या किया है और अब तक आप क्या कर रहे हैं, यह देश से छिपा नहीं है। आपके समस्त कार्यों का गिनाना, यहाँ असम्भव है। केवल कुछ शब्दों में यह कहा जा सकता है कि क्या कौंसिल का बहिष्कार, क्या कालिजों का त्याग और क्या तिलक-स्वराज्य-फण्ड और चरखे का काम, प्रोग्राम के सभी विभागों में आपने यथेष्ट काम किया है। तिलक-स्वराज्य-फण्ड के समय आप बीमार थे। अतः जितना आप चाहते थे उतना काम आप नहीं कर सके, इसके लिए आप स्वयं दुखी थे।

जब से आप कुछ २ स्वस्थ हुए हैं तब से फिर उसी अथक परिश्रम से देश के काम में लग गये हैं। अभी हाल में अलीगढ़ की अशान्ति का पता लगाने के लिए आप अलीगढ़ गये थे। किन्तु आप वहाँ बोल न सके। क्यों कि आप पर १४४ धारा का प्रयोग किया गया।

वहाँ से आप प्रयाग आये। और यहाँ से बम्बई-कांग्रेस कमेटी में सम्मिलित होने गये।

अन्त में यह कह देना अत्युक्ति न होगी कि पंडित जी इन दिनों सब विधि देश पर कुर्बान होने को तैयार हैं। इन दिनों आपका सारा समय देश के कामों में लग रहा है।

ईश्वर ! ऐसी दया करो जिससे हमारा प्यारा चरित्रनायक युग युग जीता रहे और देश की गुलामी की ज़ञ्जीर तोड़ने में शीघ्र समर्थ होवे ।

पुरुषसिंह अली-बन्धु ।

जन्म और शैशव ।

मुसल्मान जाति के सरताज, हिन्दू मुसल्मान की एकता को रेशम-डोर से बाँधने में सहायक, महात्मा गान्धी के दाहिने हाथ पुरुषसिंह अली-बन्धुओं का जन्म (वीर शौकतअली का सन् १८७२ में और मुहम्मदअली का १८७८ में) सन् १८७३ तथा १८७८ में युक्तप्रांतीय रामपुर रियासत में हुआ था ।

आपके पूज्य दादा उसमानअली मुरादाबाद के निवासी थे । आप धनाढ्य थे । रामपुर रियासत में आपका एक बहुत ही उच्च आसन था । सिपाही-विद्रोह के समय अली महोदय ने भारत सरकार की अत्यन्त प्रशंसनीय सेवा की थी । अनेक अंगरेज़ों की प्राण-रक्षा के आपही कारणीभूत हुए थे । जिसके लिए अंगरेज़ों ने प्रशंसा के पुल बाँध दिये थे । मुरादाबाद के आस पास आपको सरकार की ओर से जागीरें भी मिली थीं ।

आपकी मृत्यु के उपरान्त हमारे चरित्रनायक अली-बन्धुओं के पिता मौलाना अब्दुलअलीखाँ रामपुर रियासत के उसी पद पर अधिष्ठित हुए । किन्तु अली-बन्धुओं के जन्म के थोड़े ही दिनों बाद सुखी परिवार को दुःखसागर में डुबो कर हैजे में जाते रहे । पूज्य पिताकी मृत्यु के समय आप लोग निरे बच्चे थे । शौकतअली ७ वर्ष और मुहम्मद

कोई दो वर्ष के थे। तब से आप अपनी पूजनीया, प्रसिद्ध दिल्लीश्वर अकबर के मंत्री दरवेशअलीखाँ के वंश से उत्पन्न, बुद्धिमती माताजी की देख रेख में रहने लगे। यद्यपि आपकी स्नेहमयी माता भी स्वामी की मृत्यु से आहत-हृदय और कातर कलेवर हो चुकी थीं; क्योंकि आपकी भी उस समय कुल २७ साल की उम्र थी, फिर भी आप साहस को साथ लेकर अपने पैरों पर खड़ी हुईं। और अपनी प्यारी सन्तानों की शिक्षा दीक्षा-की ओर दृष्टि फेरीं।

शिक्षा।

पहले अली-बन्धु अलीगढ़ स्कूल में भर्ती हुए। स्कूल की शिक्षा समाप्त कर के आप लोग कालेज में आये। दोनों भाइयों में मुहम्मद अली तेज़ थे। जिस समय आप एफ्० ए० में थे, उन्हीं दिनों बड़ी परिमार्जित और प्रौढ़ अंगरेजी में लिखे हुए आपके लेख पत्रों में छपने लगे थे। आपकी बेजोड़ लेखन-शैली और उत्तम अंगरेज़ी पर प्रोफ़ेसर लोग अत्यन्त ख़ुश रहा करते थे।

अभी आप बी० ए० में पहुँचने को थे कि आपकी प्रखर प्रतिभा पर मुग्ध होकर तथा आपको होनहार देखकर रामपुर रियासत के प्रधान मंत्री नवाब मुहम्मद इसहाक़खाँ ने आपको सिविल सर्विस परीक्षा पास करने के लिए इंगलैंड भेज दिया। वहाँ जाकर आपने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में नाम लिखवाया और वहीं पढ़ने लगे। उन्नति असहिष्णु अंगरेज़ों की कृपा हुई। आप सिविल सर्विस की परीक्षा न पास कर सके। अतः आप सन् १९०२ में स्वदेश लौट आये। आपके लौट आने पर कतिपय सज्जनों का विचार हुआ कि अली महाशय

पुनः विलायत जाँय और वहां जाकर बी० ए० की परीक्षा पास करें। ऐसा ही हुआ। आप इंग्लैंण्ड गये और अच्छे नंबरों से बी० ए० की परीक्षा पास कर के चले आये। यहाँ आकर आपने वकालत की परीक्षा दी, किन्तु उत्तीर्ण न हुए।

बड़ौदा राज्य और मौ० मुहम्मदअली।

तदनंतर आप बड़ौदा राज्य के कोई विभाग में नौकर हो गये। थोड़े ही दिनों की कार्यावली का इतना प्रभाव पड़ा कि राजा प्रजा, दोनों आपको सम्मान तथा समादर की दृष्टि से देखने लग गये। कहा जाता है कि आपके काल में बड़ौदा स्टेट के अफ़ीम विभाग की आय बीसगुनी हो गई थी। आपने राज्य में कितने प्रशंसनीय सुधार भी किये। उन सब में नौसारी ज़िले की प्रजा के कष्ट-मोचन वाली वार्त्ता विशेष उल्लेख्य है। जिस समय आप बड़ौदा राज्य में थे उस सयम बड़ौदा राज्यान्तर्गत नौसारी ज़िले की अपठित और ग्रामीण प्रजा को बहुत से रुपये देकर ज़मीन ख़रीदनी पड़ती थी। जिससे वहाँ की दीन प्रजा दिन २ दीनता के पंक में फँसती जाती थी। आपसे यह करुणा-कारड न देखा गया। फलतः आपने झट एक रिपोर्ट तैयार की और उसे सरकार में उपस्थित किया। बड़ौदा के पार्सी लोगों ने आपकी रिपोर्ट का भरपेट विरोध किया। कारण यह था कि उस रिपोर्ट में इन लोगों के स्वार्थ-साधन रूपी जड़ को काटने की कुल्हाड़ी छिपी थी! किन्तु सत्य के सामने विरोधियों की एक न चली और मुहम्मद उस विषय में जो सुधार चाहते थे, वे हो गये। इस प्रकार धनिकों के हाथ के आखेट दीनों का कल्याण हुआ।

बड़ौदा महाराज भी आपको जी जान से जानते मानते थे।

" कामरेड " का संपादन ।

कोई दो एक साल काम करके आपने बड़ौदा राज्य से दो साल की छुट्टी ली । तदनंतर आप कलकत्ते आये और "कामरेड" नामक एक अंगरेज़ी साप्ताहिक समाचार पत्र निकालने लगे । स्वदेश-सेवा करना, आपके पत्र का उद्देश्य था । इसी पत्र द्वारा आपने स्वदेश-सेवा का श्रीगणेश आरम्भ किया। पत्र का संपादन करना और उधर रियासत की नौकरी करना, ये दो भिन्न काम हैं । अतः आपने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और फिर एकचित्त हो संपादन का ही कार्य करने लगे।

इसी बीच में आपने एक निबन्धमाला प्रकाशित की । इस निबंधमाला में आपके वे लेख थे जो बड़ौदा की नौकरी के दिनों विलायत के विख्यात पत्र " टाइम्स आफ़ इण्डिया " में प्रकाशित हुए थे । इस निबन्धमाला की बहुत अच्छी धाक रही। भारतीय पंडित तथा अंगरेज़ विद्वानों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की । लार्ड मिन्टो आपके निबन्धों पर लट्टू थे ।

इसके बाद आपने प्रयाग से एक संवाद-पत्र और निकाला था, जो कुछ ही दिन चलकर बंद हो गया । इसी बीच में आपकी अंगरेजी पुस्तक Past and present (प्राचीन तथा अर्वाचीन) प्रकाशित हुई, जिसका देश में यथेष्ट आदर हुआ ।

इसी समय जावड़े के नवाब साहब ने आपको अपना वज़ीर बनाने के लिए कितना ही अनुरोध किया था । किन्तु आपने उस विचार को उपेक्षा की दृष्टि से देखा था । आपने इसका कारण बतलाते हुए अपने एक मित्र से कहा था— " समाज और स्वदेश मुझे अपनी सेवा के लिए बहुत दिनों

से आह्वान कर रहे थे। नवाब साहब ने तो अब न बुलाया है, अतः न्यायतः मैंने प्रथम निमंत्रण को ही स्वीकार किया है।"

मौलाना साहब का मतलब था कि मैंने स्वदेश-सेवा का पवित्र व्रत लिया है। देश ने सेवा के लिए आमंत्रित किया। माता की पुकारों का मैं "कामरेड" द्वारा उत्तर दे रहा हूं। ऐसी दशा में मैं दासता के पाश में बँधकर अपने पुनीत उद्देश्यों पर पानी फेरना नहीं चाहता।

मुसलिम-लीग की स्थापना।

"कामरेड" पत्र के कुछ दिन चल निकलने पर अली भाइयों ने मिलकर, अविरल परिश्रम के बाद सन् १९०६ में मुसलिम-लीग की स्थापना की। उस समय मुसलिम-लीग का उद्देश्य था (१) मुसल्मान जाति में शिक्षा-प्रचार करना (२) राजभक्ति द्वारा अपने प्राप्य अधिकार-प्राप्त करना। लीग के स्थापित होते ही दोनों भाई उसकी आदर्श-रक्षा करने के यत्न में संलग्न हुए।

उन्हीं दिनों माननीय सर आगाखाँ मुसलिम विश्वविद्यालय की निर्माणचेष्टा में लग रहे थे। मौ० मुहम्मद अली ने अपने उत्साह से आगाखाँ का हाथ बँटाया। कहते हैं कि यदि आप सरकार की क्रूर-दृष्टि के न शिकार हुए होते तो यह पवित्र-उद्देश्य पूर्ण हो चुका होता।

सन् १९१२ के ज़माने तक लीग के उद्देश्यों में परिवर्तन आ गया था। इस समय लीग का उद्देश्य कांग्रेस के सिद्धान्तों के साथ मिल कर काम करने लग गया था। अब लीग भी स्वराज्य की माँग सरकार के सामने डंके की चोट से उपस्थित करने लगी। अली महोदय का "कामरेड" पत्र उद्देश्य

प्रचारक का काम करने लग गया था । फल यह हुआ कि उसकी राजनैतिक गति सरकार की आँखों में खटकने लगी। अधिकारी लोग उसकी मृत्यु कामना करने लगे। यह देखकर मियाँ मुहम्मदअली उसे देहली ले गये । देहली में आपने उसे उर्दू हमदर्द के रूप में निकाला और इस धूम से निकाला कि वह प्रति दिन ६००० बिकने लग गया।

कहना नहीं होगा कि इस पत्र ने राष्ट्रीय-जगत में एक नई उमंग भर दी, स्वदेशी-आन्दोलन का एक नवीन-जीवन फूंक दिया और उस समय तक अपनी तीव्र गति से राजनैतिक क्षेत्र में दौरा लगाता रहा, जब तक कि अली-भाई पकड़े न गये। अन्त में यह पत्र भी सरकारी क्रोधानल का पतंग बना।

मसजिद का झगड़ा ।

सन् १९१३ में कानपुर निवासियों ने मछली बाज़ार में से एक नयी सड़क निकाली । इस रास्ते में मसज़िद का कुछ अंश पड़ता था। कलेक्टर ने उसे तोड़ने की आज्ञा दे दी। जब यह बात सर्व साधारण के कानों में पड़ी तो बड़ा आन्दोलन खड़ा हुआ । मुसलमान अधिकारियों ने ऐसा करने से मना किया । किन्तु स्वेच्छाचारी सरकार ने एक न सुनी और पुलिस की सहायता से मसज़िद के उस अंश को तोड़वा ही दिया।

धार्मिक-गढ़ पर काफ़िरों का हमला होते देखकर मुसलमान जनता में बड़ा कुहरम मचा। स्थान स्थान पर सभायें हुईं, जगह जगह विरोध में परचे वितरण किये गये, सैकड़ों आबाल वृद्ध जेल गये। गर्ज़ कि एक विप्लव की दृश्य-माला तैयार हो गई । मौलाना मुहम्मद अली ने जब देखा कि यू० पी० के

लाट साहब भी इस मामले में चुप हैं तब आपने हमदर्द में एक ज़ोरदार लेख छपवाया। फिर सैयदवज़ीर हुसेन के साथ चुप चाप इंग्लैण्ड चले गये।

आपने जाते ही विलायत के मंत्रि-मण्डल में यह बात कही। फल अच्छा रहा। विलायत से बड़े लाट हार्डिञ्ज के पास न्याय-विधान के लिए आज्ञा-पत्र आया। तदनुसार उदार लार्ड महोदय कानपुर गये और दोबारा मसज़िद बनवाने की आज्ञा प्रदान की। इससे मुसल्मान-सागर में आनन्द की लहरियाँ उठने लगीं।

इस घटना के घटने के थोड़े दिनों बाद योरप में तुर्की और बालकनों में युद्ध आरंभ हुआ। अली महाशय ने अपने धर्म प्राण ख़लीफ़ा के सहायतार्थ डा० अन्सारी की अध्यक्षता में एक कमीशन भेजा। तुर्कों ने इससे बहुत ही लाभ उठाया।

सन् १६१३ में ही देहली की म्यूनिसिपैलिटी ने मुसल्मान कसाइयों के लिए कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाही थी जिससे वहाँ के कसाइयों का बहुत कुछ स्वार्थ-सत्यानाश होता था मौलाना साहब ने बीच में पड़ कर समझौता करा दिया।

अली-बन्धु की गिरिफ़्तारी।

योरोपीय-महाभारत की रण-दुंदुभी बजी। धीरे धीरे योरोप की समस्त शक्तियाँ इस संग्राम में सम्मिलित होने का उपक्रम करने लगीं। तुर्की के भी कूद पड़ने की ख़बर सुन पड़ी। पता लगा कि तुर्की सरकार के विरुद्ध लड़ेगा। वस्तुतः ख़बर सही निकली। तुर्की युद्ध में कूद पड़ा।

इसी समय "लंडन टाइम्स" नामक विलायती पत्र में "तुर्की की पसंद" शीर्षक एक बहुत ही घृणित लेख निकला। लेख में मुसलमान धर्म पर भी आक्षेप किये गये थे। ऐसी दशा में जोशीले धार्मिक और सच्चे देशभक्त वीर मुहम्मदअली अपनी लेखनी को न रोक सके—उक्त लेख का प्रतिवाद छाप ही तो दिया। प्रतिवाद की प्रति भारतसरकार के पास पहुँची नहीं कि हमदर्द पत्र और छापाख़ाने की ज़ब्ती का हुक्म आया। इतना ही नहीं, भारत-रक्षा-कानून के अनुसार मौ० शौक़तअली और मुहम्मदअली दोनों भाई गिरफ़्तार कर लिये गये। आपके पकड़े जाने की ख़बर उड़ते ही, सारी दिल्ली में सनसनी फैल गई। देहली की समस्त जनता आप के दर्शनों के लिए जुम्मामसजिद में आ टूटी। उस अवसर पर आपने उपस्थित समारोह को शान्त रहने का उपदेश दिया और कहा—"जेल जाना देश-भक्तों के लिए परम गौरव की बात है।" आप देहली से छिंदवाड़ा जेल में भेजे गये।

आपकी गिरफ़्तारी से देश भर में खलबली मच उठी। सभी हिन्दू मुसलमान क्षुब्ध हो उठे। सभाओं तथा प्रतिवाद-सूचक लेखों से सरकार के कानों तक प्रजा के इस महान क्षोभ-समाचार को पहुँचाया गया—महात्मा तिलक से लेकर बड़े छोटे सब नेताओं ने सरकार की इस नीति की निन्दा की, फिर भी सरकार के कानों पर जूँ नहीं रेंगी। सरकार छोड़-ने को तैयार न हुई। जब लार्ड चेम्सफोर्ड ने मि० एनीबिसेन्ट को मुक्त किया था, उस समय सबको पूर्ण आशा थी कि अली भाई भी जेल से छूटेंगे। किन्तु वहाँ तो सरकार की नीयत कुछ और ही थी। सरकार शर्त लेकर तब उन्हें छोड़ना चाहती थी। यह विचार एकदिन अली-बन्धुओं के पास शर्तनामे के

रूप में पहुंचा। उसमें लिखा था—"यदि अली-भाई युद्ध जारी रहने तक राजनैतिक आन्दोलन न करें, किसी सभा-संगठन में भाग न लें, तो सरकार इस शर्तनामे पर दस्तख़त करते ही उनको छोड़ देगी।" वीर अली-बन्धुओं ने इस तरह की अपमानपूर्ण मुक्तिपर लानत भेजी और कहला भेजा कि सरकार जब तक हमें नज़रबन्द रखना चाहे, रखे। हमें उसमें कोई आपत्ति नहीं है। पर हम उस शर्तनामे पर कदापि दस्तख़त न करेंगे।

वीरों की वीरोचित प्रतिज्ञा को सुनकर सरकार सन्न हो गई। लेकिन समस्त देश एक स्वर से "वाह वाह" करने लगा। उससमय आप वीरों की वीरप्रसूता माता वानू बेगम ने कहा था—"मैं इस बात को जानकर परम प्रसन्न हुई कि मैंने अपने कोख से दो शेरों को जन्म दिया है—गीदड़ उत्पन्न नहीं किया है। यदि सरकार मेरे इन दो पुत्रों के साथ मेरी सारी सम्पत्ति भी छीन लेगी-तो भी मैं दुखी न होऊँगी।"

इसी समय श्रीमती वानू भी अपने पुत्रों के पास आश्वासन दान देने चली गईं और सानन्द जेल में रहने लगीं।

इस वीरोचित कार्यसे सरकार और भी जली और अली भाइयों पर क़ाबुल के राजा तथा योरप के शत्रुओं के पास गुप्त-पत्र भेजने का कलंक लगाया। निर्दोष अली-बन्धुओं ने इस बात की कलई खोलकर सरकार की असत्यता का प्रमाण दुनिया को दिखा देना चाहा। आपने मि० मजरुलहक और मि० जिन्ना के पास समाचार देकर सरकार से उन गुप्त पत्रों को प्रकाश में लाने की प्रार्थना की। पर वहाँ तो ढोल में पोल थी। सरकार पत्र नहीं दिखला सकी। जब मि० बिसेन्ट अली-बन्धुओं को छुड़ाने के लिये बड़े लाट से मिलीं तब

सब बातें साफ़ साफ़ मालूम हुईं। लाट साहब ने कहा—"यद्यपि अली-भाइयों ने वास्तव में कोई अपराध नहीं किया है, तथापि जब तक युद्ध का अन्त न होगा तब तक सरकार उन्हें नहीं छोड़ सकती।"

सरकार की इस न्याय-परता को लाख बार धन्यवाद।

असहयोग और अली-बन्धु।

उधर युद्ध का अन्त और इधर पंजाब का हत्याकाण्ड हुआ। एक की ख़ुशी और दूसरे के प्रायश्चित्त स्वरूप सन् १९२० के दिसम्बर मास में राज-घोषणा प्रकाशित हुई। नये सुधारों का प्राथमिक शुभ-लक्षण दिखाया गया। कतिपय राजनैतिक कैदी छूटे। उन्हीं के साथ साथ अली-बन्धुओं का भी छुटकारा हुआ।

छूटते ही अली-बन्धु रामपुर गये और वहां जाकर अपने बान्धवों से मिले। तत्पश्चात् अमृतसर कांग्रेस में सम्मिलित हुए। वहाँ सुधार-स्कीम पर बहस छिड़ी थी। आपने कहा था—"सच तो यह है कि इन नये सुधारों से हम संतुष्ट नहीं होंगे। हम पूर्ण स्वराज्य चाहते हैं, और उसके न मिलने की तिथि तक हम सरकार को बाध्य करते रहेंगे। सरकार भले ही हमें जेल भेजे या जो चाहे सो करे।"

वहीं से दोनों भाई त्यागी होकर देश-सेवा में लगे। मौलाना मुहम्मद अली खिलाफत के सम्बन्ध में डेपुटेशन के साथ विलायत गये और शौकतअली भारत के तद्विषयक आन्दोलन में शामिल हुए।

उधर ख़िलाफत का डेपुटेशन असफल लौटा और इधर पंजाब के हत्याकाण्ड में न्याय न होने के कारण महात्मा

गान्धी बड़े दुखी हुए। आपने सरकार के इन दोनों नैतिक-पतनों की यथेष्ट निन्दा की।

मुसलमानों के पेशवा अली भाई और हिन्दुओं के नायक महात्मा गान्धी, ये दोनों आत्माएँ एक सूत्र में बँधी। हिन्दू और मुसलमान इन दो देश की प्रधान नैतिक शक्तियों का सम्मेलन हुआ। वर्षों के बिछुड़े हुए इन दो बंधु-बल ने एक तीसरी आसुरी शक्ति के मुक़ाबले में खड़े होने का विचार निश्चित किया। असहयोग की लड़ाई छिड़ गई।

अली-बन्धु जेल में।

असहयोग की लड़ाई छिड़ते कहिये कि राष्ट्रीय-जगत् में एक अद्भुत-स्फूर्ति, एक नया जीवन, एक नई ताकत आ गई। देशवासियों के लिये और विदेशियों के लिये भी असहयोग एक नया अस्त्र था। इस लिए दोनों ओर कौतूहल उत्पन्न हुआ। देश ने धीरे धीरे इस शान्तिमय संग्राम के कड़खे का मधुर किन्तु प्रभाव-जनक-स्वर सुनना आरंभ किया। और सरकार मन ही मन यह सोचती रही कि भला मशीनगन के सामने चरखा कब तक ठहरेगा। उसे यह क्या मालूम था कि—

जहाँ काम आवे सुई कहा करे तलवार।

असहयोग की लड़ाई में हिन्दू मुसलमान दोनों ही सैनिकों को भर्ती करना था। आवश्यकता इस बात की मालूम हुई कि महात्माजी एक ओर से रंगरूट भर्ती करते चलें और अली बंधु दूसरी तरफ़ से। इस तरह स्वराज्य सेना शीघ्र तैयार हो जायगी और तब हम सरकार से शान्ति के साथ लड़ सकेंगे। इसी संकल्प के दिन से अली-बंधु महात्मा जी के कन्धे से कन्धा जोड़कर काम करने लगे। महात्मा जी ने अगर पदवियों तथा

कौंसिलों के बहिष्कार की बात उठाई तो अली-बन्धुओं ने उस संदेश को देश के कोने कोने पहुँचाने में सहायता दी। महात्मा जी ने यदि सरकारी स्कूलों और कालिजों से लड़कों को निकलने का प्रस्ताव रक्खा तो अली-बन्धुओं ने उसके लिये अनेक प्रयत्न किये। ग़र्ज़े कि असहयोग के सभी विषयों में आप प्रचार का काम करते रहे। हिन्दू-मुसलमानों में अटूट एकता बनी रहे, इसका आपको बराबर ध्यान रहा।

ऐसी दशा में, जैसा कि सरकार की नीति है—अली-बन्धु सरकार की दृष्टि में बराबर खटकते रहे! कई बार इनकी वक्तृताओं में हिंसा की गंध बताई गई। कई दिन इस बात की अफ़वाह उठी कि इनके व्याख्यानों में अनावश्यक उष्णता रहती है। मतलब यह कि सरकार अपने लोहे के पंजे, दस्ताने के अन्दर से निकालने का विचार करने लगी। किस लिए, इन्हीं दो शेर के बच्चों पर झपटने के लिए। एक बार जब आपकी मदरास वाली वक्तृता पर शोर गुल हुआ तो महात्मा जी के कहने पर मुहम्मदअली ने देश के सामने दुःख प्रकट किया। किस बात के लिए, कुछ ऐसे शब्दों के लिये जिनमें कुछ लोग हिंसा की गंध बतलाते थे। ऐसा करना एक अहिंसात्मक-संग्राम के नायक के लिए कितना ठीक था, इसे हम जानते हैं, सरकार क्या जानेगी।

ख़ैर, यह मामला ख़तम हुआ। अब आई जुलाई। इसी जुलाई के ८, ९, १० का कराँची में ख़िलाफ़त कान्फ्रेंस हुई थी जिसमें अनेक मुसलमान नेता थे। हिन्दू नेता भी कुछ इने गिने जा सके थे। कान्फ्रेंस में एक मार्के का प्रस्ताव पास हुआ। जिसका आधार, कारण और उद्देश्य धार्मिक था। मुसलमानी-मज़हब के जानकारों का कहना है कि एक मुसलमान का दूसरे

मुसलमान के ऊपर तलवार उठाने को कौन कहे, अपशब्दों का प्रयोग करना भी अधर्म है, पाप है, हराम है। इसी धार्मिक आधार पर मुसलमान सैनिकों को वहिर्भारत के मुसल्मानों के विरुद्ध जिन पर सरकार हाथ साफ़ कर रही है या यों कहिए कि इन्हीं को हथियार बनाकर इन्हीं के भाइयों के गले पर छुरी उतारने पर लाचार करती है, लड़ने से रोकना, भारत के मुसल्मानों के लिए लाज़िम हुआ। एतदर्थ प्रस्ताव पास हुआ। जिसका आशय यह था।

"देश के हरएक मुसल्मान के लिए सरकारी फ़ौज में भरती होना या भरती कराना दोनों ही हराम है। क्यों कि मुसल्मानी मज़हब का ऐसा ही हुक्म है।"

प्रस्ताव पास हुआ। सरकार के प्रतिनिधि लार्ड रीडिङ्ग महोदय के कान खड़े हुए।

अली-बन्धुओं की गिरफ़्तारी की अफ़वाह उड़ने लगी— आख़िर में अफ़वाह में सचाई मिली। दोनों भाई १४ सितम्बर को पकड़ लिए गये। लेकिन क्या हुआ, देश ने सब्र और शुजाअत से गिरफ़्तारी की ख़बर को पढ़ा, जनता ने शान्ति से काम लिया। न कहीं चूँ हुआ और न कहीं चपड़। मोहन की मधुर वंशी के पीछे चलने वाली क़ौम ने इन दो सिंहों को पिंजड़े में जाते हुए देखा।

कहना नहीं होगा कि इनके साथ ५ और भी सज्जन थे। धाराएँ इन दो भाइयों पर एकदम एक, दो, तीन, चार, पाँच लगा दी गईं। अभियोग का अभिनय खेला जाने लगा। अभियोग की आद्योपान्त कार्यवाही जिन्होंने पढ़ी है वे जानते हैं कि सरकार की इन अदालतों का अभिनय कैसा होता है। अन्त में, अभिनय समाप्त हुआ। पहिली नवम्बर को हुक्म

सुनाने का दिन आया। जज ने जूरी को खूब पट्टी पढ़ाई। फलतः एक स्वामी शंकराचार्य को छोड़कर शेष छः को सज़ाएँ हुईं। मौलाना साहबों को दो जुर्मों पर अलग २ दो दो सालों की सख़्त सज़ाएँ हुईं। किन्तु यदि बराबर जेल में रहना पड़े, तो दोही वर्ष जेल में रहना पड़ेगा।

पुरुषसिंह किस वीरता, धीरता और शान से जेल गये हैं यह सभी जानते हैं।

देश-वासियो ! हिन्दू मुसलमानो ! आओ, जेल में बैठी हुई उन दो मज़हबी जोश के पुतलों, राष्ट्रीय-भाव की जीती जागती आत्माओं को उनकी बलि के लिये, उनके साहस और त्याग के लिये बधाई के संदेश भेजें।

त्यागवीर चित्तरञ्जनदास।

जन्म और कुल।

देश-सेवा में मुक्तहस्त, महात्मा गान्धी के दाहिने हाथ त्यागवीर चित्तरंजनदास का जन्म सन् १८७० ई० में हुआ।

आपके पूज्य पिता भुवनमोहनदासजी वैद्य जाति के थे। अंगरेज़ी की शिक्षा भी आपने उच्चकोटि की प्राप्त की थी। पहले आपका सम्बन्ध वैष्णव धर्म से था किन्तु बाद में आपने ब्राह्म-धर्म स्वीकार कर लिया।

भुवनमोहन अपनी दानशीलता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनके द्वारा अनेक हिन्दू-गृहस्थों का पालन पोषण होता था। जब कभी वे किसी को दुःख-कातर देखते थे, या जब किसी की करुणा-कहानी सुन पाते थे, तभी वे करुणा-प्लुत होकर झट दुःख में हाथ बँटाने को आगे पैर बढ़ाते थे। अनेक-अवसर ऐसे आये जहाँ ऋण ले लेकर आपको सहायतार्थ आगे बढ़ना पड़ा। एकबार की बात है कि किसी मनुष्य ने आप से ४०सहस्र रुपये की अपनी ज़मानत कर लेने का अनुरोध किया। दयाशील और उपकारपरायण भुवनमोहन उसकी बातों में आ गये। आपने उस व्यक्ति की ज़मानत कर ली। अन्त में वह व्यक्ति वंचक निकला और आपको ४० सहस्र रुपये के फेर में डालकर स्वयं चम्पत हुआ। फलतः आप रुपयों के दायी हुए।

भुवनमोहन की लेखनी में भी कमाल की ताक़त थी। आपने "ब्राह्म-पबलिक-ओपीनियन" पत्रका बहुत दिनों तक संपादन भी किया था।

आप कलकत्ता हाईकोर्ट के एटर्नी थे, इतने पर भी आपमें "हाँ हज़ूर" की लत बिल्कुल न थी। आप अपनी सत्यनिष्ठा के लिये हाकिमों की आँखों में अच्छे न थे। आपकी आदत थी कि आपने जब कभी जजों की कहीं धींगा धींगी देखी, झट उसी समय उनके पीछे पड़ गये या पत्रों में शिकायत छाप दी। एकबार इसी आलोचना करने के कारण आपको विपद्ग्रस्त भी होना पड़ा था। क़िस्सा यों है। एकबार भुवन-मोहन ने किसी हत्यापराधी के मामले की हाईकोर्ट में अपील की। भुवनमोहन जानते थे कि अपराधी निर्दोष है, उसपर व्यर्थ का दोषारोपण किया गया है। यही कारण था जो वे उसे छुड़ाने के यत्न में लगे थे। किन्तु जज आपसे चिढ़े थे। इस लिए उन्होंने अपील ख़ारिज कर दी और पहली सज़ा बहाल रक्खी। अब क्या था, न्याय का गला घोंटा जाते देख-कर निर्भीक भुवनमोहन से न रहा गया। अतः वे निर्भय होकर बोले—"मान्यवरो, आप मुझसे अप्रसन्न थे न कि इस निर्दोष अपराधी से। मुझे भली भाँति ज्ञात है कि आप लोगों ने इस मामले की किस प्रकार उपेक्षा की है-न्याय-युक्त विचार नहीं किया है। स्मरण रहे, इससे समस्त अंगरेज़ जाति के माथे पर कलंक का टीका लगता है, क्योंकि वकील पर अस-न्तुष्ट हो, उसके मुवक्किल को फाँसी देना भला कहाँ का न्याय है?"

भुवन की स्पष्टतापूर्ण निर्भीक बात सुन लोग बहुत चक-राये। अन्त में उन्होंने फिर से उस मुक़दमे की सुनाई की।

मामला झूठा निकला । अपराधी छूट गया और भुवनमोहन की बात रही ।

अब आपही बतलाइये, ऐसे निर्भीक, साहसी, दानवीर और त्यागी पिता के पुत्र होकर जो हमारे चरित्रनायक देश-नर-रत्न हुए तो, इसमें आश्चर्य ही क्या है । क्योंकि—

"आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ।"

शिक्षा ।

देश-सन्यासी चित्तरञ्जनदास की प्राथमिक शिक्षा भवानीपुर के लंडन मिशनरी स्कूल में हुई थी । आपने एन्ट्रेन्स की परीक्षा यहीं से पास की । तत्पश्चात् आप कलकत्ता प्रेसीडेंसी कालेज में प्रविष्ट हुए और वहीं से बी० ए० परीक्षा पास की ।

आप एक बड़े होनहार छात्र थे । आपकी प्रतिभा और स्मरण शक्ति को देखकर सब लोग चकित होते थे । आपके सहाध्यायियों में कोई ऐसा न था जो साहित्य में आपकी जोड़ में आ सकता । जिस समय आप कालेज में पढ़ रहे थे उस समय भी आपके लेख बड़े ही गम्भीर और वक्तृता बड़ी ही ओजस्विनी होती थी । प्रोफ़ेसर-गण आपकी लेखन-कला तथा साहित्य-चर्चा की बहुत ही सराहना किया करते थे-कहा करते थे समय आयेगा जब चित्तरञ्जन साहित्य और समाज में नामवरी पावेगा ।

बी० ए० की परीक्षा पासकर, आप सिविल सर्विस की परीक्षा देने के लिये इंग्लैंण्ड गये । वहाँ आपका स्वाध्याय क्रम बड़ा ही नियमित रहा । फल यह हुआ कि आपने बड़े, सम्मान के साथ परीक्षा पास की । इसी बीच में आपके जीवन

की एक बहुत ही प्रसिद्ध घटना घटी। सन् १८९२ में जब कि आप विलायत में थे, जेम्स मैकलिन् नामक एक पार्लिमेण्ट के सदस्य ने एकबार स्पीच देते हुए कहा—

"भारत के हिन्दू और मुसल्मान, गुलाम जाति के हैं और ये लोग हमारी गुलामी कर रहे हैं"।

अभिमान में चूर अंगरेज़ की इस अपमान-जनक बात को भला चित्तरंजन जैसा स्वाभिमानी देश-भक्त कब सह सकता था। सुनते ही आपकी देह में आग लगगई, आप क्रोध से भभक उठे। आपने तत्काल लंडन प्रवासी भारतवासियों को आह्वान किया और एक सभा संगठित की। सभा में मैकलिन् की असभ्यता का घोर प्रतिवाद किया गया। इतना ही नहीं युवक चित्तरंजन ने बड़ी निर्भीकता के साथ ज़ोरदार शब्दों में अंगरेज़ी जाति का कच्चा चिट्ठा खोलकर जनता के सामने रख दिया। आपके इस साहसपूर्ण कार्य ने विलायत के बड़े बड़े राजनीतिज्ञों की आँखें खोल दीं। जगत-विख्यात राजनीतिज्ञ ग्लैडस्टन भी उस समय जीवित थे। मैकलिन् का अशिष्ट व्यवहार उन्हें भी कम बुरा न लगा। उन्होंने अंगरेज़ों की एक प्रतिवाद-सभा की। युवक चित्तरंजन भी बुलाए गये। उस समय आपने जो वक्तृता दी, उसकी भाषा इतनी अच्छी थी, उसमें इतना जीवन था कि सारा लंडन थर्रा उठा और सब लोग मैकलिन् को धिक्कारने लगे। इतना ही नहीं, तत्कालीन मंत्रिमंडल ने उन्हें पदच्युत भी कर दिया।

आख़िर में अभिमानी-अंगरेज़ जाति के मैकलिन् को भारत की गुलाम-जाति के एक इक्कीस वर्षीय युवक के सामने सर झुकाना पड़ा।

इस घटना का यह परिणाम हुआ कि अधिकारियों ने आपको उग्र समझ कर निर्वाचन में सम्मिलित नहीं किया। यह देखकर आप हताश या दुःखी न हुए, बल्कि बैरिस्टरी की परीक्षा की तैयारी करने लगे और यथा समय परीक्षा पास भी कर ली।

चित्तरंजन का विलायत-प्रवास अत्यन्त मनोरंजक रहा। जितने दिनों आप वहाँ रहे, आप रोज़ किसी न किसी जगह व्याख्यान देने के लिए बुलाये जाते थे। लंडन की जनता आपके व्याख्यानों को सुनने के लिए सदा लालायित रहती थी। इसी समय स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी प्री० वी० कौंसिल के मेम्बर बनने की इच्छा से विलायत गये हुए थे। युवक दास ने अपने व्याख्यानों द्वारा दादा भाई की यथेष्ट सहायता की। फलतः आप मेम्बर चुने गये।

बैरिस्टरी।

चित्तरंजन बैरिस्टर बनकर भारत लौट आये। जब घर आये और पिता ने सुना कि मेरा लड़का निर्वाचन में नहीं लिया गया तो उनके शिर पर मानों गाज गिर पड़ी। उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। कहाँ तो उनका यह ख्याल था कि मेरा बेटा हाकिम होकर आयेगा, और कहाँ उसका यह शोक-संबाद लिये आना, पिता के दुःख का कारण क्यों न होता। फलतः वे बीमार पड़ गये।

चित्तरंजन की शिक्षा में प्रभूत धन व्यय हुआ था, अतः भुवनमोहन का घर खोखला हो गया—उन पर बहुत सा ऋण लद गया। वे पूरे दिवालिये बन गये। ऐसा देख पितृ-भक्त सी० आर० दास ने एक दिन महाजनों को बुलाया और पिता

के ऋण का खुद देनदार बने। आपने पिता को अपमान से बचा लिया।

आप ऋण के देनदार तो बन गये किन्तु पास में इतना धन कहाँ था जो महाजनों के कर्ज़ चुका सकते। आरंभिक अवस्था थी, बैरिस्टरी भी अभी उतनी चलती न थी कि ऋण-शोध कर सकते। फलतः! आप अत्यन्त चिन्तित रहने लगे।

संयोग से आपकी निराशाओं का पौ फटा। सुदिन का सूर्योदय हुआ। एक घटना घटी, जिसने आपके भाग्य-कपाट को खोल दिया।

सन् १९०७ ई० में जब महात्मा अरविन्दघोष राज-द्रोह के अपराध में पकड़े गये तब किसी का साहस न हुआ कि निस्वार्थ हो पैरवी कर उस महान् आत्मा को अन्यायी सरकार के पंजे से छुड़ावे। अरविन्दघोष तथा उनके हितेच्छु कितने वकील बैरिस्टरों के द्वार खटखटा आये किंतु कोई ऐसा साहसी देश-भक्त विपन्न-बान्धव न मिला जो सरकार की आँखों का काँटा बनकर अपने देश-बन्धु के पाँव के काँटे को निकालता।

हमारे वीर चरित्रनायक ताल ठोंक कर मैदान में कूद पड़े। सुयोग को हाथ से न जाने दिया। सरकार का कोप-भाजन बनना स्वीकार किया किन्तु भारत माता के एक समुज्वल रत्न को अत्याचारी के हाथ में पड़ते देखना स्वीकार नहीं किया।

आप झट महात्मा अरविन्द के पास गये और आश्वासन दिलाते हुए उनसे कहा-"घोष महाशय! आप चिन्ता न कीजिये। आपकी ओर से सरकार से लड़ूँगा।

युवक चित्तरंजन की बातें सुनकर घोष महाशय चकित हो गये। आपने सोचा कि एक साधारण नवीन बैरिस्टर मेरी

पैरवी कर सरकार के ख़ूनी पंजे से मुझे छुड़ाना चाहता है, यह कैसी असाध्य साधन-चेष्टा है। वे दास महोदय के गले में हाथ डाल कर बोले—"प्रिय दास ! क्या तुम यह बात सच्चे हृदय से कह रहे हो ?"

"हाँ घोष महोदय ! आप मेरी बात पर विश्वास करें" चित्तरंजनदास ने निर्भीकितापूर्वक उत्तर में कहा।

अंत में चित्तरंजन बैरिस्टर नियुक्त हुए। सरकार की ओर से दिग्गज क़ानून ज्ञाता मि० नार्टन खड़े हुए और विपन्न घोष की ओर से यही चित्तरंजन। शेर और बकरी का जोड़ था। आठ मास तक मामला चलता रहा। दिन प्रति दिन अवस्था भीषण रूप धारण करती गई। किन्तु चित्तरंजनदास के साहस ने जवाब नहीं दिया, शक्ति दिन दूनी और रात चौगुनी होती गई। कहते हैं कि जिस समय आप अदालत में खड़े होते थे, हाईकोर्ट का जज मि० उडरफ् दाँतों तले अँगुली चबाने लगता था, नार्टन की नानी याद आजाती थी और जनता चुपचाप खड़ी २ दलीलें सुना करती थी। फलतः ! ज्यों हीं जजने फ़ैसला सुनाया-"मि० अरविन्द बेकसूर छूटे" कि चित्तरंजन के गले में जय-माला पड़ी, देश में घर २ आनन्द उत्सव मनाया जाने लगा।

इस घटना ने चित्तरंजन को शिथिल बैरिस्टरी को ज़ोर से चला दिया। अरविन्द के मामले में उनकी प्रतिभा का प्रकाश क्या हुआ मानों "रमा" ने उनके घर में प्रवेश कर लिया। बैरिस्टरी इतनी चली कि एक सेकेंड की भी फुर्सत नहीं मिलने लगी। रुपयों से घर भर दिया। इस समय, अभी असहयोग-आन्दोलन में आने के पूर्व आपकी तीस हज़ार मासिक की आमदनी थी।

अन्यान्य-कार्य।

समाज-सेवा।

घर में लक्ष्मी आते ही महाशय सी० आर० दासने सब से पहले पिता का ऋण चुकाया, फिर अपनी जाति और समाज को समस्त विधवाओं और दीन गृहस्थों की धनसे साहायता की। आपने कन्या-दान के कारण दीन हीन कितने ही व्यक्तियों को मरते मरते बचा लिया।

गर्ज़ कि धन आते ही धर्म और समाज के हित की ओर व्यय करने की धारणा भी चित्त में आई।

आप धन के मामले में सदा से उदार हैं। क्यों न हो यह उदारता आपकी वंशगत जो ठहरी।

साहित्य-सेवा।

समाज-सेवा के बाद आपकी साहित्य सेवा का नम्बर है। आप साहित्य के बड़े प्रेमी थे और हैं भी। आपकी साहित्यिक-प्रीति ने ही आपको "नारायण" का संपादन करने के लिए उत्तेजित किया। आपने उसे हाथ में लिया और इतने प्रेम से चलाया कि कुछ ही दिनों में वह इतना प्रसिद्ध हुआ कि आजकल उसकी गणना बंगाल के—सर्वोच्च पत्रों में है।

मालञ्च, सागर-संगीत, किशोर-किशोरी और अन्तर्यामी ये आपके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। आपने अंगरेजी में भी कई एक पुस्तकें रची हैं। जो प्रायः राजनैतिक विषय की हैं।

पंजाब के हत्याकाण्ड में आपका कार्य।

सन् १९१९ में पंजाब का भीषण-हत्याकाण्ड हुआ। देश-भर थर्रा उठा। सनसनी फैल गई।

सरकार के अन्यायी अधिकारियों की तलवारें ख़ून से रँग उठीं पंजाब की रक्त-प्लावितधारा ने चारों ओर से अपने-पुत्रों को आह्वान किया। जहाँ तहाँ से सब दौड़े।

फलतः दास महोदय भी दौड़े, पंजाब गये। वहाँ आप चार मास तक रहे और बराबर देश-भाइयों के दुःख विवरण की खोज में रहे। किस उद्योग, श्रम, निर्भीकता और बुद्धिमत्ता से आपने यह कार्य संपदान किया, वह कांग्रेस-कमीशन-रिपोर्ट के किसी भी पाठक से छिपा नहीं है। इस कमीशन के आपही कमिश्नर भी नियुक्त थे। इस कार्य में आपने कम स्वार्थ त्याग नहीं किया था। प्रायः एक लाख रुपये की आर्थिक हानि सहन की, शारीरिक और मानसिक हानि हुई, सो ऊपर से।

असहयोग और मि०, सी० आर० दास।

गत वर्ष जिस समय महात्मा गान्धी के गूढ़ मस्तिष्क से असहयोग-आन्दोलन का विचार उत्पन्न हुआ और जिस समय देश में उसकी उपयोगिता बतला कर आपने विदेशीय-सरकार की नौकरशाही रूपी गढ़ को गिराने के लिए उसे अस्त्र बनाने का उपदेश आरंभ किया उस समय आवश्यकता पड़ी कि लोक-मत को साथ लेकर चला जाय। लोक-मत के संग्रह का उपक्रम कांग्रेस का अधिवेशन था। अतः इस पर विचार करने के लिए कलकत्ते में कांग्रेस की विशेष बैठक हुई। देश के गण्यमान्य नेता वहाँ उपस्थित हुए। असहयोग का प्रस्ताव सामने रक्खा गया। भिन्न २ मतों को आमंत्रित किया गया।

हमारे चरित्रनायक नेता भी वहीं उपस्थित थे। उस समय असहयोग की स्कीम से आपका मतभेद रहा, किन्तु नागपुर कांग्रेस के अवसर पर आपने असहयोग-आन्दोलन

को पूर्ण रूपेण स्वीकार किया। देश-भक्ति का गाढ़ा रंग आप पर चढ़ा। देश भक्ति का पवित्र प्याला आपने ओंठ से लगाया, नशा सवार हुआ, जोश भड़का, आपने देश के नाम पर सन्यास लिया--दीक्षा ग्रहण की। अनन्त आय-वाहिनी बैरिस्टरी को नमस्कार किया, प्रलोभनपुंज योग्य-वस्तुओं पर आपने पदाघात किया, विलास और सुखों को पैंड़ लगाये और पूरे त्यागी ऋषियों की भाँति जीवन व्यतीत करने लग गये।

जब से आपने असहयोग-व्रत धारण किया है, तभी से आप अधिक परिश्रम से उसकी नीति के प्रचार करने में लग गये हैं। बंगाल के विद्यार्थियों को कालेज छोड़ने का संदेशा सुनाना, कौंसिलों में जाने से लोगों को रोकना, गर्ज़ कि बंगाल में जीवन फूँकना, इस समय आप ही का काम है।

बंगाल में आज जितनी कुछ जागृति है उसका श्रेय आपही को है। बंगाल इस समय आपके संकेत पर चलता है।

अभी हाल की बात है जिस समय आप मैमनसिंह प्रचारार्थ जा रहे थे उस समय मैजिस्ट्रेट ने आपको १४४ धारा के अनुसार रोक लिया। जनता में समाचार पहुंचते ही चारों ओर हड़ताल कर दी गई। वकीलों ने एक सप्ताह तक अदालत न जाने की प्रतिज्ञा कर उस आज्ञा का घोर विरोध किया। अन्त में अधिकारियों को अपनी आज्ञा वापस लेनी पड़ी।

आपकी गति अबाध्य हो गई। आप फिर द्विगुण गति से असहयोग- प्रचार में लगे और इस समय तक उसी जोश और वीरता से आप डटे काम करते जा रहे हैं।

तिलक-स्वराज्य-फण्ड तथा चरखे के प्रचार के लिए भी आपने सराहनीय उद्योग कर दिखलाया है। गर्ज़ कि बंगाल से जो कुछ

हुआ है या हो रहा है, वे सब आपही के श्रम और साहस का फल है।

बड़े सौभाग्य की बात है कि बंगाल के शेर सुरेन्द्र के नख-रद-विहीन और वृद्ध होते ही यह एक दूसरा साहसी शेर निकल पड़ा। अच्छा हुआ, बंगाल की नाक रह गई।

कहना नहीं होगा कि देश-भक्त चित्तरंजनदास ने बड़े साहस और त्याग से काम लिया है। जिस दिन से आप असहयोग-संग्राम में आए हैं, उसी दिन से अटूट परिश्रम से काम कर रहे हैं। आप असहयोग-सेना के प्रधान सेना-नायकों में हैं। आपने जिस त्याग और देश-भक्ति से यह काम उठाया है, वह सर्वथा अनुकरणीय है। इन्हीं सब देश-सेवाओं का फल है जो देश ने बहुमत से बम्बई में होने वाली कांग्रेस का आपको सभापति चुना है। कौन जानता है, भारत के स्वराज्य का आरंभ आपके ही हाथों होने वाला हो।

देश-भक्त चित्तरंजनदास दीर्घजीवी और बलवान हों, इन्हीं के हाथों दीना-भारतमाता के पैरों से पैशाचिक पराधीनता की बेड़ी कटे और सुखमय-स्वराज्य स्थापित हो,-हम तीस कोटि भारत-सन्तानों की ईश्वर से यही प्रार्थना है।

उपदेश ।

स्वराज्य ही ईश्वर है और स्वराज्य ही सब धर्मों में आदर्श धर्म है ।

असहयोग ऐसी तपस्या है । जिसके द्वारा अनायासही स्वराज्य-स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है ।